ISSN : 0976-0024

जुलाई-दिसंबर 2021

अंक : 108-109

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका

Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

Editor-in-Chief : Santosh Khanna

फोन : 011-45579335
मोबाइल : 09899651272
09899651872

सदस्यता फॉर्म

विधि भारती परिषद्

बीएच-48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

महिला विधि भारती पत्रिका पूर्व में यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल थी।
क्रमांक 156, पत्रिका संख्या 48462

कृपया मुझे विधि भारती परिषद् का सदस्य बनाने की कृपा करें। मेरा चैक/बैंक ड्रॉफ़्ट संलग्न है --

1.	वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
2.	आजीवन सदस्य शुल्क	5,000/-- रुपए
3.	संस्थागत वार्षिक सदस्य शुल्क	500/-- रुपए
4.	संस्थागत आजीवन सदस्य शुल्क	20,000/-- रुपए

नाम : ....

शैक्षिक योग्यता : ....

व्यवसाय : ....

कोई प्रकाशित कृतियाँ : ....

स्थाई पता : ....

फोन (कार्यालय) : .... (घर) : ....

मोबाइल : .... **ई-मेल :** ....

नोट : विधि भारती परिषद् की सदस्यता के लिए शुल्क परिषद् के बैंक खाते में जमा कराया जा सकता है। कृपया शुल्क के साथ बैंक सेवा चार्ज 100/-- रुपए जमा कराएँ।

Vidhi Bharati Parishad : SBI SB Account No. 10115361055
IFSC Code : SBIN0003702

इस अंक का आवरण : स्नेह सुधा नवल

जुलाई-दिसंबर
July-December

अंक : 108-109

2021

ISSN : 0976-0024

महिला
Mahila

विधि भारती
Vidhi Bharati

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेजी) शोध पत्रिका
Research (Hindi-English) Quarterly Law Journal

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मानव संसाधन विकास मंत्रालय के आंशिक अनुदान से प्रकाशित)

ISSN 0976-0024
9 770976 002001

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

प्रधान संपादक
सन्तोष खन्ना
संपादक
डॉ. उषा देव

पत्रिका में व्यक्त विचारों से सम्पादक/परिषद् की सहमति आवश्यक नहीं है।

Indexed at Indian Documentation Service, Gurugram, India
Citation No. MVB-27/2021

विधि भारती परिषद्

बी.एच./48 (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088 (भारत)
मोबाइल : 09899651872, 09899651272
फ़ोन : 011-45579335
E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail.com, santoshkhanna25@gmail.com
Website : www.vidhibharatiparishad.in

PEER REVIEWED REFREED JOURNAL

'महिला विधि भारती' पत्रिका (पूर्व यू.जी.सी. की सूची में भी शामिल, क्र. 156, पत्रिका संख्या 48462)

विधि चेतना की द्विभाषिक (हिंदी-अंग्रेज़ी) विधि-शोध त्रैमासिक पत्रिका

E-mail : vidhibharatiparishad@hotmail. com

Website : www. vidhibharatiparishad. in

अंक : 108-109 (जुलाई-दिसंबर, 2021)

प्रधान संपादक : सन्तोष खन्ना, **संपादक :** डॉ. उषा देव

बोर्ड ऑफ रेफरीज एवं परामर्श मंडल

1. डॉ. के.पी.एस. महलवार : चेयर प्रो., प्रोफेशनल एथिक्स, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी, न.दि.
2. डॉ. चंदन बाला : डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, जयनारायण व्यास वि.वि., जोधपुर
3. डॉ. राकेश कुमार सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, लखनऊ विश्वविद्यालय
4. डॉ. किरण गुप्ता : पूर्व विभागाध्यक्ष, फैकल्टी ऑफ लॉ, दिल्ली विश्वविद्यालय
5. न्यायमूर्ति श्री एस.एन. कपूर : पूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय, पूर्व सदस्य, राष्ट्रीय उपभोक्ता आयोग, नई दिल्ली।
6. प्रो. (डॉ.) सिद्धनाथ सिंह : पूर्व डीन एवं विभागाध्यक्ष, विधि विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
7. प्रो. (डॉ.) गुरजीत सिंह : संस्थापक वाइस चांसलर, नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी एवं न्यायिक अकादमी, असम

परिषद् की कार्यकारिणी, संरक्षक : डॉ. राजीव खन्ना

1. डॉ. सुभाष कश्यप (अध्यक्ष)
2. न्यायमूर्ति श्री लोकेश्वर प्रसाद (उपाध्यक्ष)
3. श्रीमती सन्तोष खन्ना (महासचिव)
4. रेनू नूर (कोषाध्यक्ष)
5. श्री अनिल गोयल (सचिव, प्रचार)
6. डॉ. प्रेमलता (सदस्य)
7. डॉ. आशु खन्ना (सदस्य)
8. डॉ. पूरनचंद टंडन (सदस्य)
9. श्री जी.आर. गुप्ता (सदस्य)
10. डॉ. उषा टंडन (सदस्य)
11. डॉ. सूरत सिंह (सदस्य)
12. डॉ. के.एस. भाटी (सदस्य)
13. डॉ. शकुंतला कालरा (सदस्य)
14. डॉ. उमाकांत खुबालकर (सदस्य)
15. अनुरागेंद्र निगम (सदस्य)

शुल्क दर

वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
आजीवन शुल्क 5,000/-- रुपए
संस्थागत वार्षिक शुल्क 500/-- रुपए
संस्थागत आजीवन शुल्क 20,000/-- रुपए

डाक शुल्क अलग

अंक 108-109 में

1. संपादकीय -- 207

2. धार्मिक सहिष्णुता एवं पंथनिरपेक्षता : भारतीय परिदृश्य में रामास्वामी उड़यार वाद का विवेचन / **डॉ. एस.एस. दास** -- 212

3. उच्च शिक्षा : गुणवत्ता एवं प्रबंधन / **डॉ. निशा केवलिया (शर्मा)** -- 221

4. भारतीय परिवेश में महिलाओं के बदलते आयाम / **डॉ. ज्योत्सना शर्मा** -- 228

5. संवैधानिक जीवन के वैविध्य एवं भविष्य दर्शन का प्रतीक : भारत के संविधान की प्रस्तावना / **डॉ. नीता बोरा शर्मा** -- 231

6. फलों के टोकरे (लघु कथा) / **मनमोहन कालरा** -- 237

7. अपनी संसद को जाने / **ख्याली राम पांडे** -- 238

8. आस्था (लघु कथा) / **मनमोहन कालरा** -- 239

9. दिल की रानी (कहानी) / **मुंशी प्रेमचंद** -- 240

10. नेताजी सुभाष चंद्र बोस एवं भारतीय शासन प्रणाली / **डॉ. भगवानदास** -- 255

11. गांधी दर्शन के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भाषा, साहित्य और संस्कृति के विशेष / **डॉ. साधना गुप्ता** -- 262

12. वर्तमान समय में हिंदी भाषा की उपादेयता / **डॉ. शकुंतला कालरा** -- 270

13. स्वतंत्रता सेनानी नीरा आर्य की मार्मिक गाथा / **अनाम......** -- 274

14. इंदिरा गांधी : भारत रत्न से सम्मानित भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री / **सन्तोष खन्ना** -- 276

15. 'हिंदी हो स्वाभिमान की भाषा' विषय पर अंतर्राष्ट्रीय बेबीनार : संदर्भ भारत की स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव / **अरविंद भारत** -- 288

16. मातृ-दिवस / **डॉ. उषा देव** -- 292

17. Pravakar Mallick & Anr v. State of Orissa – Regarding reservation in promotions / **Supreme Court Judgement** -- 295

18. 'आज का दुर्वासा' कहानी संग्रह : एक विवेचन (पुस्तक समीक्षा) / **डॉ. सुधेश** -- 296

19. Food Safety Laws in India **/ Ramesh Chander Sabharval** -- 299

20. Child Rights in India : A Systematic Literature Review / **Mitesh Tiwari and Jyoti Panchal Mistri** -- 307

लेखक मंडल

Dr. S.S. Das : Faculty of Law, Centre for Juridical Studies, Dibrugarh University, Dibrugarh-786004, Assam, **Mobile :** 91-9435594172,
Email : das77juris.ram@gmail.com/ssdas@dibru.ac.in

डॉ. निशा केवलिया (शर्मा) : प्राचार्य, मोतीलाल नेहरू लॉ कालेज, खंडवा, (म.प्र.)

डॉ. ज्योत्सना शर्मा : वरिष्ठ अनुवाद अधिकारी, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय

डॉ. नीता बोरा शर्मा : राजनीति विज्ञान विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल

ख्याली राम पांडे : संसदीय अधिकारी (सेवा निवृत्त)

मनमोहन कालरा : एन.डी.-57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034 **फोन :** 011-27312696

मुंशी प्रेमचंद : प्रसिद्ध साहित्यकार एवं लेखक

डॉ. भगवानदास : प्राचार्य, शासकीय स्वशासी कन्या उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (मध्य प्रदेश)

डॉ. साधना गुप्ता : सहायक आचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़, राजस्थान
द्वारा -- मंगलपुरा, टेक, झालावाड़ 326001 राजस्थान
E-mail : sadhanagupta0306.sg@gmail.com, **Mobile :** 9530350325

डॉ. शकुंतला कालरा : एसोसिएट प्रोफेसर, मैत्रेयी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
संपर्क : एन.डी.-57, पीतमपुरा, दिल्ली-110034, **मोबाइल :** 9625999798, 9958455392

सन्तोष खन्ना : प्रधान संपादक, 'महिला विधि भारती' पत्रिका, शालीमार बाग

अरविंद भारत : प्रधान संपादक; अखंड भारत (राष्ट्रीय त्रैमासिकी)

डॉ. उषा देव : प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कहानीकार, (सेवा निवृत्त) माता सुंदरी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

डॉ. सुधेश : पूर्व विभागाध्यक्ष (भाषा विभाग) जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

Ramesh Chander : 46/22, Gandhi Nagar, Gurugram
e-mail : rameshchander sambherwal : sambherwal@yahoo.co.in

Mitesh Tiwari : LLB (Hons), Final Year, Institute of Law & Legal Studies, SAGE University, Indore – 452001, **E-mail :** advmiteshtiwari@gmail.com

Jyoti Panchal Mistri : Assistant Professor, Institute of Law & Legal Studies, SAGE University, Indore – 452001

संपादकीय

भारत इस वर्ष अपनी स्वतंत्रता के 75वें वर्ष के अवसर पर अमृत महोत्सव वर्ष मना रहा है। इस लंबी कालवधि में इस बात का लेखा-जोखा करने की भी ज़रूरत है कि स्वतंत्रोत्तर काल में हमारी क्या उपलब्धियाँ रहीं और क्या असफलताएँ रहीं तथा इतिहास के इस काल खंड से हम क्या सीख सकते हैं। 15 अगस्त, 2021 के अवसर पर इस बात की चर्चा थी कि हमें यद्यपि 15 अगस्त, 1947 को स्वतंत्रता मिली थी परंतु साथ ही भारत का विभाजन भी हो गया था और भारत के दो टुकड़े कर उसमें से एक नया देश पाकिस्तान बना दिया गया था। इस विभाजन के कारण असंख्य लोगों को अपना घर बाहर छोड़ कर अपने ही देश में विस्थापित होना पड़ा था। यही नहीं, सांप्रदायिक दंगों में अनेक लोगों को अपनी जान गँवानी पड़ी थी और अनेक प्रकार की अन्य भयावह त्रासदियों से गुज़रना पड़ा था। उस त्रासदी के शिकार लोग विभाजन की उस पीड़ा को इस जन्म में तो नहीं भुला सकते हैं।

विभाजन की उस त्रासदी से सभी को इन मायने में सीखना है कि उस इतिहास को पुनः कभी नहीं दोहराया जाए। उसके लिए हमें हर वर्ष 14 अगस्त को विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस मनाना चाहिए ताकि कोई भी इस बात को न भूले कि सब को परस्पर सद्भावना, करुणा और प्रेम जैसी भावनाओं को जीवन का एक अनिवार्य हिस्सा बनाए रखना चाहिए। 'विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस' मनाने की आवश्यकता पर बल देते हुए भारत के प्रधान मंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने कहा था कि ''बंटवारे का दर्द भुलाया नहीं जा सकता... नफरत और हिंसा के कारण हमारे लाखों बहनों और भाईयों को विस्थापित होना पड़ा और अपनी जान गँवानी पड़ी। 14 अगस्त को विभाजन विभीषिका स्मृति दिवस मनाने से यह दिवस हमें भेदभाव, वैमनस्य और दुर्भावना के ज़हर को ख़त्म करने के लिए न केवल प्रेरित करेगा बल्कि इससे एकता, सामाजिक सद्भाव और मानवीय संवेदना भी मज़बूत होगी।''

यद्यपि विभाजन हुए एक अरसा बीत गया, विभाजन के शिकार काफ़ी लोग अब तक काल के गाल में समा चुके हैं परंतु इतिहास के पन्नों में दर्ज़ उस विभीषिका की पीड़ा को भुलाया नहीं जा सकता है। जो लोग उस विभाजन की पीड़ा के भुक्तभोगी अभी जीवित हैं क्या वह उस दर्द को भुला सकते हैं? ऐसा नहीं है कि उस विभाजन की विभीषिका का दर्द केवल उन्हीं लोगों ने सहा, जो उसके शिकार हुए थे। बाद में उस विभाजन का खामियाज़ा अन्य पीढ़ियों को अब तक भी भुगतना पड़ रहा है क्योंकि जिन समस्याओं को सुलझाने के लिए देश का विभाजन हुआ, वह बिल्कुल नहीं सुलझी बल्कि वह समस्याएँ और इतनी अधिक

उलझती चली गई हैं कि न तो दोनों देशो में सद्भाव बना है और न ही शांति स्थापित हो सकी है। क्या यह सच नहीं है कि विभाजन के कारण ही अब तक पाकिस्तान के साथ 1965, 1971, 1999 में रक्तरंजित युद्ध हुए हैं बल्कि उसी का परिणाम है कि आतंकवाद ने भारत में असंख्य लोगों को अपना शिकार बनाया है बल्कि साथ ही पाकिस्तान के साथ एक अघोषित युद्ध बराबर चल रहा है; सीमाओं पर सेनाओं को किसी-न-किसी कारण से युद्ध की स्थिति में रहना पड़ता है और अब तक सेनाओं के असंख्य वीर जवान देश की सुरक्षा के लिए अपना बलिदान दे चुके हैं और यह प्रक्रिया निरंतर जारी है। यह तो वहीं वह वाली कहावत चरितार्थ हुई लगती है जिसमें कहा जाता है 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की।'

पाकिस्तान की स्थापना धर्म के आधार पर हुई थी। पाकिस्तान अपनी दकियानूसी मानसिकता से आगे नहीं बढ़ पाया जिसके आधार पर उसने 1947 में भारत जैसे देश का विभाजन करा लिया था बल्कि वह उस मानसिकता से बाहर निकलना ही नहीं चाहता। इससे वहीं की जनता का नुक़सान तो हुआ ही है क्योकि उनके हितों और कल्याण के लिए पाकिस्तान ने कभी मुस्तैदी नहीं दिखाई, हमेशा भारत विरोध की ज़हरीली ग्रंथि में लिप्त वह पाकिस्तान की प्रगति और विकास की बात सोच ही नहीं सकता जिसके कारण वहाँ की जनता दिनोदिन अवनति और अनुदारवाद की खाइयों में धकेली जा रही है कि अब उन्हें अपना अस्तित्व भी ख़तरे में लग रहा है।

भारत के अधिकांश लोग विशेष रूप से तत्कालीन विस्थापित लोग हमेशा यह सोचते रहे हैं कि वर्ष 1947 में हुआ विभाजन एक बनावटी विभाजन है और बाद में बांग्ला देश के उदय ने भी यह सिद्ध कर दिया था कि धर्म के आधार पर विभाजन बनावटी है क्योंकि पाकिस्तान बनाने वाले तत्त्वों का चाहे धर्म भिन्न रहा हो परंतु वह सभी एक ही भारत माँ की संतान हैं, सभी के पूर्वज एक ही हैं, सभी की संस्कृति और भाषा भी एक है, केवल अंतर है तो कुछ स्वार्थों में लिपटी हुई सोच का अंतर है। उस समय अरविंद महाऋषि जैसे महान् व्यक्तित्व यह भविष्यवाणी भी कर गए हैं कि यह बनावटी विभाजन ख़त्म हो कर रहेगा। परंतु पिछले 75 वर्ष के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पाकिस्तान का केवल एक ही एजेंडा है और वह है भारत विरोध हालाँकि वह देख रहा है कि धर्म के आधार पर कई पाकिस्तानी सूबों के लोग पाकिस्तान से स्वतंत्रता की माँग करते आ रहे हैं। क्या पाकिस्तान विभाजन की विभीषिका से यह सीखने का प्रयास करेगा कि धर्म की भूमिका व्यक्तिगत होती है, उसे मानने का सभी को अधिकार है परंतु उस आघार पर व्यक्ति व्यक्ति से, देश देश से अलग नहीं किया जा सकता। सभी जानते हैं कि 1947 और उससे पहले भी उस समय इंडियन नेशनल कांग्रेस के महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू जैसे बड़े-बड़े नेता देश के विभाजन के घोर विरोधी थे और महात्मा गांधी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि ''पाकिस्तान उनकी लाश पर बनेगा।'' किंतु ऐसा क्या हुआ कि देश का विभाजन करना पड़ा। क्या इसमें अंग्रेज़ी साम्राज्य की ओर से कोई षड्यंत्र रचा गया? कहते हैं कि उस समय के कुछ महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ जो

इंग्लैंड में सुरक्षित हैं उन्हें वहाँ की सरकारें सार्वजनिक करने से इनकार करती हैं जिनसे पता चल सकता है कि वस्तुतः उस समय भारत का विभाजन क्यों करना पड़ा? क्या अंग्रेज़ी साम्राज्य ने एडविना सहित लॉर्ड माउंटबेटन को भारत में उस षड्यंत्र के तहत नियुक्त किया था क्योंकि अब सार्वजनिक हो चुका है कि एडविना का खुले तौर पर विष कन्या के रूप में उपयोग किया गया था और उस समय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण नेता के विरुद्ध उनका प्रयोग किया गया था। इस षड्यंत्र के तहत अंग्रेज़ी साम्राज्य ने इस दंपत्ति के माध्यम से ऐसे कौन-कौन से फ़ैसले करवा लिए जो भारत का अहित करते सिद्ध हुए। जैसे कश्मीर प्रश्न पर भारत का अनावश्यक रूप से संयुक्त राष्ट्र संघ में जाना या जब भारतीय सेनाएँ कबायलियों सहित पाक सेना को खदेड़ने में सफल हो रही थी तब एकाएक युद्ध विराम क्यों कर दिया गया जिसके कारण भारत के साथ-साथ उस समय कश्मीर का भी विभाजन हो गया। कश्मीर का वह टुकड़ा अभी भी तथाकथित 'आज़ाद कश्मीर' के नाम से पाकिस्तान के क़ब्जे में है जिसके कारण अब तक दोनों ओर से ख़ून की नदियाँ बहाई जा चुकी हैं किंतु समस्या वही ढाक के तीन पात-सी बनी हुई है। हाँ, अब यह स्पष्ट हो गया है कि 'आज़ाद कश्मीर' के लोग पाकिस्तान के चंगुल से मुक्त होना चाहते हैं और वहाँ रोज इसके लिए धरने-प्रदर्शन आदि हो रहे हैं।

महात्मा गांधी ने कहा था कि पाकिस्तान उनकी लाश पर बनेगा। महात्मा कोई बात झूठ-मूठ तो नहीं कहते थे पर उस समय कौन-से ऐसे तत्त्व थे जिन्होंने महात्मा गांधी को अपने उस वचन से मुकर जाने दिया। क्या उन तत्त्वों का तेज़ महात्मा जैसे तपस्वी से भी अधिक तेज़ था जो महात्मा को वरगा लिया गया? अगर महात्मा गांधी ने अपना वचन पूरा किया होता तो शायद देश का बँटवारा रोका जा सकता था। अगर महात्मा गांधी को देश का बँटवारा रोकने के लिए अपने प्राण भी गँवाने पड़ते तो सोचिए वह शहादत कितनी बड़ी होती और बाद में उन्हें गोडसे की विचारधारा के हाथों अपने प्राण नहीं गँवाने पड़ते। प्रश्न यही है कि देश विभाजन के संबंध में किसने उन्हें अपने हत्थे चढ़ा लिया और एक अनहोनी ऐसी वापर गई कि जिसका ख़ामियाज़ा अब तक पूरा देश भोग रहा है और अभी उसका कहीं अंत नज़र नहीं आता है।

अब आइए, मैं आपको अपने बचपन की ओर लिए चलती हूँ। देश विभाजन के समय मैं बहुत छोटी थी। उस समय मेरे घर के पास में मसीत में मैं उर्दू के हिज्ज़े सीख रही थी कि हमारा अपना स्थान, शहर, क्षेत्र पराया हो गया। उस समय ज़िला मिंटगुमरी, तहसील दीपालपुर के पास हमारा एक बहुत बड़ा क़िला था जिसमें हम सब लोग रहते थे। मेरे पिता ज़मींदार होते हुए भी एक अध्यापक हुआ करते थे। मुझे पता नहीं क्यों उनके पिताश्री अर्थात् मेरे दादा ने उनकी टीचरी छुड़वा कर उन्हें हमारे गाँव भगवानपुर में ज़मींदारी करने के लिए भेज दिया था। जब देश का बँटवारा हुआ तो हम भगवानपुर गाँव में थे। हमारे राहक (मुज़ारे) मुसलमान हुआ करते थे जो हमारी खेतीबाड़ी करते थे। वह सब क्षेत्र पाकिस्तान के हिस्से में जाने के कारण मुसलमान हिंदुओं के विरुद्ध उठ खड़े हुए। भगवानपुर के सभी हिंदु हमारे अपने रिश्तेदार की एक क़िलेनुमा हवेली में इकट्ठे हो गए। उस हवेली की बाहर की दीवारे ऊँची-ऊँची थी। उसके बाद उनमें पशुओं के तबेले थे। बीच में दालान थे और बाद में आते थे रहने-खाने

आदि के कमरे। वह कमरे दो मंज़िला थे। हवेली इतनी बड़ी थी कि उस समय भगवानपुर में रहने वाले सभी हिंदू उसमें रहने लगे। पता नहीं, हम सब कितने दिन उस हवेली में रहे। झुंड के झुंड मुसलमान आक्रमण करने के लिए हवेली पर चढ़ते दिखाई देते और अंदर आने का प्रयास करते। परंतु एक ख़ौफ़ उन्हें आगे बढ़ने से रोक देता था। वास्तव में मेरे रिश्तेदार, जिन्हें तब लाला लोग कहा जाता था जब बैठकें करते थे तो मुसलमान कमी (नौकर-चाकर) उनके हुक्के में चिलम भरते थे। वहीं पर हिंदुस्तान-पाकिस्तान बनने की चर्चाएँ होती थीं और हमारे लाले वहाँ चर्चा में शेखी बघारते थे कि हम मशीन गनें ख़रीद लेंगे। मुसलमान नौकर-चाकर यह सब सुनते ही थे। हमारे लाले ज़मींदार अवश्य थे पर जुझारू बिल्कुल नहीं थे, सब काम नौकर-चाकर करते थे। उन्होंने मशीन गनें ख़रीदने की शेख़ी तो बघारी थी परंतु किया-धरा कुछ नहीं था। जब वास्तव में आक्रमण के रूप में हर रोज़ मुसीबत का सामना करना पड़ता तो पता नहीं किस लाले के दिमाग़ में यह विचार आया कि हमने मशीन गने ख़रीदने का ज़िक्र तो किया था पर बेशक ख़रीदी नहीं, क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि हमला करने वालों को यह लगे कि लालाओं ने मशीनगन ख़रीद ली हैं। किसी ने जुगत भिड़ाई और हैंड पंप के ऊपरी हिस्से को दूसरी मंज़िल की छत पर फिट कर दिया और जब भी हमला होता कोई उस हैंड पंप की चौड़ी नाल में मूँज डाल कर आग लगा देता। उससे धुआँ निकलना शुरू हो जाता। हमलावर सब ग्रामीण ही थे, शायद उन्हें लगता कि हो न हो लालाओं ने मशीन गन ख़रीद ली है और अगर हमले में सब आगे बढ़ेंगे तो वह मशीन गन से सबको भून कर रख देंगे। अतः हमलावर हाथों में तलवारें लिए हवेली की बाहर की दीवारों पर ज़रूर चढ़ आते थे पर छत पर धुएँ के बादल बनते देख वहीं से लौट जाते। इस मनौवैज्ञानिक दबाव से लालाओं की हमलों से रक्षा हो गई परंतु वह पुनः हमले के लिए नहीं आएँगे, यह नहीं कहा जा सकता था। लालाओं ने सब औरतों को कह रखा था कि अगर कभी हमलावर अंदर आ जाएँ तो वह उनसे लड़ते हुए मारे जा सकते हैं, उस स्थिति में सब औरतें घर में बने कुएँ में छलाँग लगा देंगी। साथ में बच्चों को भी ले कूद जाएँगी। जब भी हमला होता, सब और शोर मच जाता, 'आ गए-आ गए'। औरतें कुएँ की ओर कूच करने लगतीं परंतु हर बार हमलावर धुएँ के बादल देख लौट जाते।

कुछ दिन यह खेल चलता रहा पर चारों ओर से मुसलमानों से घिर जाने पर सुरक्षा की कोई गारंटी नहीं थी। मुझे नहीं मालूम कि लालाओं और मुसलमानों में कैसे और कब बातचीत हुई, मुसलमान सभी पर मुसलमान बन जाने का दबाव बनाने लगे। सुनने में यह भी आया कि हमारे प्रमुख लाला ज़मींदारों ने धर्मांतरण कर लिया था। अब मुसलमान कह रहे थे कि अब आप अपने युवाओं को हमारे साथ लूट-मार और हमलों के लिए हमारे साथ भेजो। मुझे अब भी धुँधली-सी याद है कि कैसे उस हवेली का एक ख़ूबसूरत युवा एक बार बुरी तरह जख़्मी हो कर लौटा। उसको गर्दन पर तलवार लगी थी, मुसलमानों ने उस पर वार किया या कुछ और हुआ, उसकी हालत देख हवेली में चारों ओर चीख़ो-पुकार मच गई। उस समय बेहद तेज़ बारिश हो रही थी। मानो हवेली वालों के साथ आसमान भी फूट-फूट कर रो रहा था।

उस नौजवान, सुंदर युवा का कैसे इलाज़ किया गया, मुझे कुछ पता नहीं है। उसके बाद जल्दी ही कुछ दिन बाद आर.एस.एस. के लोग अपने साथ भारतीय सैनिक ले कर हम सब हिंदुओं को वहाँ से निकालने आ गए। एकाएक वहाँ से निकलने का आदेश आ गया। वहाँ से सभी अपना घर बाहर छोड़ निकल पड़े। हवेली से निकलने वालों के पास एक ताँगा और कुछ घोड़ियाँ थीं। ज़्यादातर को पैदल ही निकलना पड़ा। हम सब उस समय छोटे भाई-बहिन थे, उस समय हमारे पास एक ही घोड़ी थी, उस पर बारी-बारी से बच्चों को बिठाया जाता। मेरी माँ, मेरे पिता, मेरा बड़ा भाई और बहिन सब पैदल चल रहे थे। माँ बीमार-सी थी। मेरी बड़ी बहिन मेरे साल-डेढ़-साल के भाई को उठा कर चल रही थी। पिताजी घोड़ी की लगाम संभाल रहे थे और बड़ा भाई घोड़ी पर बैठे छोटे भाई-बहनों को संभाल रहा था ताकि कोई घोड़ी से गिर न जाए। धीरे-धीरे रास्ते में और हिंदू उस काफ़िले में शामिल हो रहे थे और सभी नहर के किनारे गिरते-पड़ते पैदल चल रहे थे। रास्ते में उस नहर में महिलाओं और बच्चों की लाशें तैरती नज़र आ रही थीं। काफ़िला पंजाब में फाज़िलका के रास्ते हिंदुस्तान पहुँचा था। फाज़िलका में हमारे पास खाने के लिए भी पैसे नहीं थे। हमारे पिताजी ने वह घोड़ी जिस पर बच्चे बैठ कर आए थे फाज़िलका में बेच दी और हम लोग फिरोज़पुर आ गए क्योंकि हमारी मासी जी उस समय वहीं थीं। उनके पति उस समय सरकारी नौकर थे। हम लोग एक मकान में रुक गए। वहाँ हमारे मामा, मामी और उनके बच्चे भी थे। घर बाहर छोड़ने के बाद हिंदुस्तान आ जाने पर मुसीबतें भी साथ ही आ गई थीं। अभी कुछ रोज़ ही उस मकान में रहे कि फिरोज़पुर में बहुत बड़ी बाढ़ आ गई। मकान में पानी भरने लगा, सब लोग छत पर चले गए। बाद में हमें वहाँ से निकाल कर शहर के ऊँचे स्थान पर पहुँचाया गया और बाद में कुरूक्षेत्र के कैंपों में रखा गया। वहाँ भी हैजा ऐसा फैला कि हमें वहाँ से निकाल कर शायद जबलपुर या कहीं और पहुँचाया गया और वहाँ भी कैंपों में रखा गया।

अपने ही देश में विस्थापित हो जाने की कहानी बहुत लंबी है और त्रासपूर्ण है जिसे शब्दों में बयाँ नहीं किया जा सकता। बस एक ही प्रश्न बार-बार ज़ेहन में आता है कि देश का विभाजन क्यों किया गया? हिंदू-मुस्लिम में आपसी वैमनस्य के कारण उनमें विभाजन से पहले भी आपस में दंगे होते रहते थे और हमने देखा कि स्वतंत्र भारत में भी दंगों का क्रम रुका नहीं? अगर विभाजन समाधान होता तो स्वतंत्र भारत में सांप्रदायिक दंगे क्यों हो रहे थे?

बचपन में देखी उस विभीषिका का एक परिणाम यह रहा था कि मुझे रात में रोज डरावने स्वप्न आते कि सब ओर शोर मचा है -- ''आ गए, आ गए''। सब बदहवास-से दौड़ रहे होते। डर के मारे सभी सहमे-सहमे कमरों या छत पर छिपने की कोशिश करते। जब डर के मारे स्वप्न टूटता तो शरीर सुन्न-सा होता या डर के मारे काँप रहा होता। यह सिलसिला कई वर्षों तक चला। बचपन की उस विभीषिका ने उस समय के बच्चों के व्यक्तित्व पर क्या विपरीत प्रभाव डाला होगा, इसके बारे में कहीं कोई रिकॉर्ड नहीं होगा। नेताओं को तो विभाजन के फ़ैसले से सत्ता सुख मिला होगा, लोगों को क्या मिला?

❑

डॉ. एस.एस. दास

धार्मिक सहिष्णुता एवं पंथनिरपेक्षता : भारतीय परिदृश्य में रामास्वामी उड़यार वाद का विवेचन

(Religious Tolerance And Secularism In Indian Context With Special Reference To Ramaswami Udayar V. District Collector, Perambalur District Of Tamil Nadu)

एक ग्राम सभा वी. कालाथुर जो कि तमिलनाडु के पेरंबलूर जनपद के वेप्पनथताई तालुक में आता है, यहीं के एक ग्राम की एक प्राचीन परंपरा के अनुपालन को लेकर पंथनिरपेक्षता पुनः संकट में आ गई। कालाथुर में हिंदू एवं मुस्लिम दोनों पर्याप्त संख्या में रहते हैं। प्रस्तुत संदर्भ में जनसंख्या विषयक (Demographic) विवेचन करना उचित नहीं होगा। यह स्वीकार्य तथ्य है कि दोनों समुदायों की पर्याप्त संख्या है। दोनों समुदायों के बीच अलिखित समझौता है जिसके तहत कालाथुर गाँव के पश्चिमी भाग में अधिकांशतः हिंदू जनसंख्या का निवास है एवं पूर्व की ओर मुस्लिम आबादी रहती है। यह पुनर्वास (Rehabilitats) नया नहीं है, कौन देशीय था और कौन विदेशी या प्रवासी यह भी विवाद बिंदु नहीं था। न ही यह भारतीय संस्कृति में संपूर्ण भारत में कहीं पर भी था। परंतु मनभेद के बीज ब्रिटिश शासकों द्वारा डाले गए वह भी जाते जाते। अन्यथा भारत भूमि पर धार्मिक सहिष्णुता कभी भी परिचय की मोहताज नहीं रही है। यह स्वयंसिद्ध थी। सांस्कृतिक विभिन्नता, बहुलवाद या अनेकवाद भारतीय धरा की उर्वरता थी और है जो सदैव फलती-फूलती रही है। हमने कभी धार्मिक युद्ध नहीं लड़े हैं। हाँ, धर्म के संपोषण में अनेक युद्ध लड़े हैं, और सर्वस्व न्यौछावर किया है जो कि किसी इतिहासकार का मोहताज नहीं है। जबकि जिन आक्रांताओं ने भारत में राज किया, उन पाश्चात्य शासकों के मूल निवास स्थानों पर कई धर्म युद्ध लड़े गए। इसी क्रम में 18वीं शताब्दी में भी युद्ध लड़ा गया, जो कि 3 दशक तक चला। उसी के पश्चात् 'पंथनिरपेक्षता' की अवधारणा अस्तित्व में आई, जो कि राज्य एवं चर्च के सख्त विभाजन को दर्शाती है। सर्वप्रथम, सन् 1851 में 'पंथनिरपेक्षता' (Secularism) शब्द का प्रयोग जॉर्ज जैकब होलीओक (George Jacob Holyoake) ने किया, वह एक अज्ञेयवादी एवं दार्शनिक एवं लेखक थे। वस्तुतः उसे राज्य के कार्य में चर्च के हस्तक्षेप से आपत्ति थी। इसी के पश्चात् राज्य की तटस्थता की अवधारणा (Doctrine of neutrality) फलने फूलने लगी। इसी क्रम में सर्वप्रथम फ्रांस एवं अमेरिका ने पंथनिरपेक्षता को विधि के रूप में आत्मसात् किया जो कि कैथोलिक अनुयायियों

का स्पष्ट विरोध था, सत्ता में दखलअंदाजी करने के लिए, इसी क्रम में फ्रांस एवं अमेरिका में क्रांतियाँ भी हुई। उसके पश्चात्, उन्हें स्वतंत्रता प्राप्त हुई एवं प्रजातंत्र की स्थापना हुई। पंथनिरपेक्षता की विचारधारा को ब्रिटेन, फ्रांस एवं अमेरिका के विभिन्न विचारकों जैसे जॉन लॉक, थॉमस जेफरसन, जेम्स मैडिसन, बेंजामिन फ्रैंकलिन, जीन बाबरोट, डेरेक परफिट, सिंगर, चार्ल्स ब्रैडलाफ, कार्ल एल. वेकर, कार्ल लोविथ, हैंस ब्लूमेंबेर्ग, एम.एच. अब्राहम, पीटर एल. बर्गर, डी.एल. मुंबी आदि। परंतु उपरोक्त विचारकों के मध्य में भी पंथ निरपेक्षता को लेकर मतभेद थे। एक समूह कठोर पंथनिरपेक्षता (Radical Secularism) की बात करता था, तो दूसरा उदार पंथनिरपेक्षता (Liberal Secularism) की बात करता था। प्रथम समूह राज्य की चर्च से पूर्ण तटस्थता की बात करता था, अर्थात् नास्त्यवादी (Agnostic approach) विचारधारा का समर्थक था जबकि दूसरा वर्ग धर्म के प्रति सहिष्णु एवं उदार दृष्टिकोण रखता था अर्थात् सभी धर्मों/पंथों का समान आदर एवं संपोषण किए जाने में विश्वास रखता था।

20वीं सदी में पंथनिरपेक्षता

यह उदारवादी विचारधारा अमेरिका एवं फ्रांस की विधियों में भी परिलक्षित हुई है। 19वीं एवं 20वीं सदी में संभवतः इसी भाव को सर्वाधिक प्रचार-प्रसार मिला एवं संभवतः इसी भाव को हमारे संविधान रचयिताओं ने भी आत्मसात् किया होगा। इसी कारण, उन्होंने पंथनिरपेक्षता शब्द में अत्यधिक साहित्य एवं स्वीकार्यता होने के बावजूद भी प्रत्यक्ष रूप से इस शब्द को संविधान में स्थान नहीं दिया। अगर दूसरे पहलू की परीक्षा करें तो यह भी संभव है कि 19वीं सदी में जब पंथनिरपेक्षता एवं धार्मिक सहिष्णुता की बात प्रारंभ हुई तो उसके पीछे भारतीय संस्कृति की महत्त्वपूर्ण भूमिका भी रही होगी क्योंकि 19वीं सदी तक संपूर्ण विश्व भारतीय संस्कृति एवं साहित्य से परिचित हो गया था। हाँ, यह अलग विषय है कि उन्होंने इसको अधिकांशतः स्वीकार नहीं किया। परंतु कुछ उदारवादी पाश्चात्य विचारकों ने भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के उद्धरण भी प्रस्तुत किए हैं। प्रस्तुत संदर्भ में मेरा कहने का अभिप्राय यह है कि 'धार्मिक सहिष्णुता' (Religious harmony not tolerence) की भावना भारत भूमि से ही प्रसारित हुई होगी। इस विषय पर तथ्यात्मक गवेषणा अत्यंत आवश्यक है क्योंकि धार्मिक सहिष्णुता भारत के कण-कण में है। षड्यंत्र के रूप में या कि भारत को खंड-खंड करने के लिए विभाजन एवं शासन (Divide and rule policy) की नीति का स्थापन किया गया था। अन्यथा धर्म के नाम पर तो सहिष्णुता की नीति संपूर्ण मुगल काल में भी देखी जा सकती थी जबकि अधिकांशतः मुगल शासकों द्वारा बर्बरतापूर्वक शासन किया गया। शासकों के विरुद्ध संपूर्ण देशीय धार्मिक विभिन्नता एवं सहिष्णुता के कारण ही उस क्लिष्ट समय में भी मुस्लिम कृष्ण भक्त, रहीम, रसख़ान आदि पैदा हुए। उसी काल में सूफी शाखाओं ने सनातन अद्वैतवाद, भक्ति मार्ग एवं प्रेम मार्ग का पर्याप्त सम्मान किया एवं उसे आत्मसात किया जो कि इस्लामिक कट्टरता के विरुद्ध था। अकबर के द्वारा दीन-ए-इलाही धर्म शुरू करना उसकी मजबूरी थी न कि उदारता

क्योंकि ऐसा करना भारतीय संस्कृति के अनुसार था, उसने यह अनुभव किया कि संस्कृति के अनुरूप चलने से ही सुचारू रूप से शासन किया जा सकता है।

थोड़ा-सा विषयांतर हो गया, विश्लेषण से पहले वाद का तथ्यात्मक अवलोकन आवश्यक है। परंतु इस वाद के तथ्यों को मूल संस्कृति एवं उस पर कट्टरता के प्रहार से अलग नहीं किया जा सकता है क्योंकि कुछ वर्ग जो कार्य एवं पद्धति (Modus operandi) स्वयं के लिए धार्मिक स्वतंत्रता का अंग मानते हैं। उसी कार्यपद्धति का अनुकरण दूसरे वर्ग के द्वारा किया जाना उन्हें नापसंद है। उसको सांप्रदायिकता का नाम दिया जाता है। इसी कारण पंथनिरपेक्षता एवं सहिष्णुता का सार्वकालिक परिदृश्य में मूल्यांकन किया जाना अति आवश्यक है।

जी हाँ, मैं कालाथुर का परिचय करा रहा था। भारत के धार्मिक आधार पर विभाजन होने के पश्चात् ही इस गाँव में भी पलायन तो नहीं हुआ, जिसको कुछ व्यक्ति विशेष वैकल्पिक निवास निर्णय (Residing by choice) कहकर एहसान भी जताते हैं कि उन्हें मौक़ा मिला था जाने का, लेकिन आपसे (दूसरे वर्ग) से अत्यधिक प्रेम की वजह से नहीं गए। इसी कारण, धार्मिक स्वतंत्रता अपंग होनी चाहिए, उन्हीं को मिलनी चाहिए बाक़ी लोग इसका प्रयोग करेंगे, तो वह सांप्रदायिकता में परिवर्तित हो जाएगी। 1951 से कालाथुर ग्राम सभा में शनैः-शनैः धार्मिक सहिष्णुता कमज़ोर होने लगी। वैमनस्यता को तो केवल बहाना चाहिए, इसी कारण विभिन्न अवसरों पर कालाथुर के दोनों वर्ग असहज होने लगे। दूसरा कारण बना, गाँव की ज़मीन का एक भूखंड (S.F. No119/1), जिसको लेकर मुस्लिम वर्ग भी चाहता था कि यह भूखंड एक सार्वजनिक भूखंड (Common land) की तरह दोनों वर्गों द्वारा समान रूप से प्रयोग किया जाना चाहिए। इसके समर्थन में उन्होंने संवैधानिक एवं अन्य विधियों का उल्लेख किया कि यह समानता के अधिकार के विरुद्ध है एवं पक्षपातपूर्ण है। इस भूखंड को पोरमबोक भूमि कहा जाता है अर्थात् वह भूखंड जो राजस्व दायित्व से मुक्त है एवं सरकार के स्वामित्व एवं नियंत्रण में है। परंतु हिंदू समुदाय का दावा है कि भूमि पोरमबोक (राजस्व दायित्व से मुक्त) है परंतु इस भूमि को हिंदू प्राचीन काल से ही धार्मिक प्रयोजनों के लिए सार्वजनिक भूमि के रूप में प्रयोग करते आए हैं। हिंदुओं का दावा यह था कि भूमि तो सार्वजनिक है परंतु हिंदू समुदाय ही सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए उसका उपयोग करता रहा है। इसी बात को लेकर दोनों वर्गों में 1951 के बाद प्रायः झगड़ा हुआ एवं पुलिस शिकायतें भी दर्ज कराई गईं जिसके परिणामस्वरूप कई बार पुलिस की उपस्थिति में धार्मिक कार्यक्रमों का आयोजन कराना पड़ा। आख़िरकार, 2019 में दोनों पक्षों द्वारा दो अलग-अलग याचिकाएँ मद्रास उच्च न्यायालय में संस्थित की गई। प्रथम याचिका में एक पक्ष ने मंदिर में धार्मिक आयोजन विधिपूर्वक करने की प्रार्थना की। दूसरी याचिका में मंदिर से धार्मिक जुलूस मुख्य मार्गों से निकालने पर प्रतिबंध लगाने की माँग की गई। न्यायालय ने धार्मिक आयोजनों को कुछ शर्तों के साथ अनुमति प्रदान की। दोनों समुदायों के झगड़ों को देखते हुए एवं शांति व्यवस्था स्थापित करने के लिए राजस्व संभाग अधिकारी (Revenue Devisional Officer) ने धार्मिक उत्सव की प्रमुख तिथियों पर

धारा 144, दंड प्रक्रिया संहिता लागू कर दी जिससे शांति एवं व्यवस्था बनाई रखी जा सके। राजस्व अधिकारी के आदेश के विरुद्ध भी एक याचिका उच्च न्यायालय में दायर की गई थी। उसी एक तिथि (28 सितंबर, 2018) पर याची ने ओरानी पोंगल विझा (Oorani pongal vigha) मनाने के लिए उप पुलिस निरीक्षक (Deputy suprentendent of police) को निवेदन किया। उप पुलिस निरीक्षक ने कुछ शर्तों के साथ ओरानी पोंगल विझा (एक विशेष धार्मिक उत्सव) के आयोजन की अनुमति दे दी। परंतु धार्मिक जुलूस निकालने पर कुछ पाबंदियाँ लगा दीं। इन शर्तों में धार्मिक उत्सव मनाने के ढंग एवं तौर तरीकों पर भी कुछ निर्देश दिए गए जिससे दूसरे की धार्मिक भावनाओं को आहत न किया जा सके। यहाँ पर आपको याद दिलाना आवश्यक है कि ऊषा बेन बनाम भाग्य लक्ष्मी चित्र मंदिर के मामले में उषा बेन ने जब न्यायालय को धार्मिक भावना आहत होने के आधार पर 'जय संतोषी माँ' फिल्म के प्रसारण पर रोक की माँग की तो न्यायालय ने याचिका निरस्त करते हुए कहा कि आप स्वतंत्र हैं कि फिल्म न देखें जिससे आप की भावना आहत नहीं होगी। मेरे विचार से यह एक चयन शील (selective) निर्णय था। इस पर पुनर्विचार आवश्यक है क्योंकि एक व्यक्ति (याची) फिल्म नहीं देखेगा फिर भी फिल्म के प्रसारण से उसकी धार्मिक भावनाओं को क्या नीचा दिखाया जा सकता है जबकि विपरीततः कुछ समुदाय तो केवल फेसबुक पोस्ट के आधार पर विधायक गणों का घर जला देते हैं और एक विशेष समुदाय की भावना न आहत हो इसलिए दूसरे समुदाय के ऊपर न केवल प्रशासनिक बल्कि न्यायिक निर्णयों के द्वारा सदैव धार्मिक भावनाओं को नियंत्रित किया जाता रहा है। क्या यह संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार के अनुरूप है? इस प्रकार के नियंत्रण सर्वकालिक रहे हैं। इन निर्णयों का केवल आधार बहुसंख्यक होने का है। यहाँ पर समानता को नज़रअंदाज किया जाता है। परंतु स्वाभाविक नियंत्रण स्वीकार करने की प्रवृत्ति उस समुदाय विशेष की ही है, मेरे विश्लेषण का मूल विषय है। जिस पर उन्हें द्वेष नहीं होता, वे आदी अभ्यस्त हैं। इसी को मैं धार्मिक सहिष्णुता के रूप में सिद्ध करने का प्रयास कर रहा हूँ जो कि धार्मिक सहिष्णुता के नाम पर नियंत्रित की जा सकती है, उसी को यदि पंथनिरपेक्षता की नवीन धारणा से बर्बर तरीके से नियंत्रित किया गया तो दुष्परिणाम होंगे। क्योंकि यह भारतीय संस्कृति में उपस्थित नहीं रहा है। जबकि दूसरी धारणा को वे सदैव आत्मसात् करते आए हैं। सरकारों को तो नियंत्रण करना है, एवं नियंत्रण दोनों स्थितियों में संभव है, तो जो तरीका सहजता से अपनाया जा सके उसी को क्रियान्वित करना एवं कराना स्वस्थ न्यायपालिका एवं कार्यपालिका की निशानी है।

हाँ, तो मेरे कथानक में उप पुलिस निरीक्षक ने स्वभावतः कुछ शर्तें धार्मिक जुलूस पर लगा दी थी, जानते थे कि इसे स्वीकार कर लिया जाएगा। परंतु इस बार ऐसा इसलिए भी नहीं हुआ क्योंकि प्रत्येक कार्यपालिक आदेश (Impugned order) में जो शर्तें लगाई गई थी, वे अति प्राचीन परंपराओं को सीधे तौर पर बाधित करती थी। इसी कारण गाँव के मरियम्मन मंदिर में तीन-दिवसीय परंपरागत धार्मिक आयोजन को धार्मिक जुलूस के साथ निर्बाद्ध रूप

से संपादित कराने के लिए याचियों ने मद्रास उच्च न्यायालय से निर्देश जारी करने के लिए याचिकाएँ संस्थित की।

उक्त याचिकाओं को माननीय न्यायाधीश ने आदेश दिनांक 21-12-2018 के द्वारा विवादित प्रशासनिक आदेशों में कुछ संशोधित शर्तों के साथ निर्धारित कर दिया। उच्च न्यायालय के आदेश के विरुद्ध पुनः दो याचिकाएँ दोनों पक्षों द्वारा पृथक पृथक संस्थित की गई। याचिका अपील संख्या 743 ऑफ 2019 को एम रामास्वामी उडयार द्वारा संस्थित किया गया एवं याचिका अपील संख्या 2064 ऑफ 2019 सुन्नत वल जमात के द्वारा संस्थित किया गया। जब विवाद एक-सदस्यीय पीठ के समक्ष विचाराधीन था, तब उक्त न्यायाधीश ने पुनः एक बार धार्मिक सहिष्णुता के स्थापत्य मानकों को स्वाभाविक रूप से स्थापित करने का प्रयास भी किया जिसका उल्लेख अति आवश्यक है। क्योंकि समाधान स्थापत्य मूल्य के स्वीकार्य करने में ही अंतोगत्वा प्राप्त किया जा सकता है। एकल पीठ के न्यायाधीश ने धार्मिक सहिष्णुता को आधार मान कर एक विद्वान् अधिवक्ता वी. लक्ष्मी नारायण को मध्यस्थ के रूप में नियुक्त किया। उन्होंने दोनों पक्षों को प्राचीन परंपराओं को सहिष्णुता के आधार पर कार्यान्वित कराने का प्रयास किया। मुस्लिम पक्ष ने दलील रखी कि उन्हें न्यायालय से ही मामले का निर्णय चाहिए इसलिए यह प्रयास भी सफल न रहा। अंततः एकल-पीठ ने 21 सितंबर, 2018 को कुछ शर्तों के साथ धार्मिक जुलूस एवं उत्सव पुलिस संरक्षण में आयोजित करने का आदेश पारित कर दिया। उपर्युक्त शर्तों में एक शर्त यह भी थी कि जब जब धार्मिक जुलूस गाँव के मुख्य रास्ते से होते हुए जाएगा तब हल्दी का छिड़काव (जो कि धार्मिक रीति-रिवाज़ का अंग था) नहीं किया जाएगा क्योंकि इससे मुख्य रास्ते में पड़ने वाली मुस्लिम बस्ती की भावनाएँ आहत होंगी। ऐसा मुस्लिम पक्ष की तरफ़ से दलील भी दी गई थी। धार्मिक उत्सव एवं जुलूस 3 दिन के लिए था। तीसरे दिन के लिए पूर्ण प्रतिबंध लगाया गया था। इसीलिए एकल पीठ के आदेश को अपील में चुनौती दी गई। अपीलार्थी की तरफ़ से दलील दी गई कि सार्वजनिक मुख्य मार्ग को धार्मिक जुलूस एवं उत्सव निकालने से केवल इस वजह से भी नहीं रोका जा सकता क्योंकि मार्ग के किनारे निवास करने वाले कुछ लोगों की धार्मिक भावनाओं को चोट पहुँचती है जो कि पंथनिरपेक्षता की भावना को भी नष्ट करता है। अपीलार्थी की तरफ़ से पूर्व निर्धारित मोहम्मद गनी बनाम पुलिस निरीक्षक, पूजा समिति फुलवरिया बनाम राज्य एवं चंदू साजन पाटिल बनाम केहलचंद बनाम पनामचंद के मामलों का उदाहरण भी दिया गया। इन वादों में धार्मिक आयोजनों को धार्मिक स्वतंत्रता का अंग माना गया था। इसके विपरीत, दूसरे पक्ष ने दलील दी कि न्यायाधीश ने प्रथम एवं दूसरे दिन धार्मिक जुलूस निकालने की अनुमति देकर भूल की है जिससे गाँव में शांति एवं व्यवस्था भंग होने की आशंका है। उनकी दलील थी कि उत्सव मंदिर प्रांगण में ही किया जाए। जुलूस निकालने की अनुमति पंथनिरपेक्षता की भावना को आहत करती है। हाँ, इस समय यह उल्लेखित करना आवश्यक होगा कि जगदीश्वरानंद बनाम पुलिस कमिश्नर कलकत्ता में भी आनंद मार्गीयो के जुलूस को इसी आधार

पर रोका गया था कि शांति एवं व्यवस्था भंग हो जाएगी। परंतु इसके विपरीत यह उल्लेख करना आवश्यक नहीं है कि प्रायः कई उच्च न्यायालयों ने मुहर्रम के जुलूस एवं ईद आदि की नमाजों को सार्वजनिक स्थल पर मनाने की अनुमति दी है। उन संदर्भों में पंथनिरपेक्षता संभवतः आहत नहीं होती होगी। यह सत्य है क्योंकि उन उद्धरणों में धार्मिक सहिष्णुता ने एक क़दम आगे बढ़कर पंथनिरपेक्षता की सूखी परिभाषा को पल्लवित एवं सुशोभित किया। परंतु इस विवाद की जड़ यह है कि इस मामले में हिंदू वर्ग ने भी धार्मिक सहिष्णुता के आधार पर सार्वजनिक मार्ग के प्रयोग की अनुमति लेनी चाही। क्योंकि न ही पंथनिरपेक्षता और न ही धार्मिक सहिष्णुता चयनशील (Selective) हो सकती है। अगर कोई भी विचारधारा चयनशील है तो वह सभ्य समाज में विकास का आधार तो नहीं बन सकती है।

सन् 2012 के पूर्व सभी मुख्य मार्गों से विधिवत धार्मिक जुलूस निकाला जाता था। किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं था। परंतु 2012 में नत्तार बाशा (W.P. No. 23484) ने एक याचिका धार्मिक जुलूस पर पूर्णतः रोक लगाने के लिए दाख़िल की एवं दूसरी 2015 में जामा मस्जिद सुन्नत वल द्वारा दाख़िल की गई। इन दोनों याचिकाओं में भी पूर्ण प्रतिबंध नहीं लगाया गया। परंतु पुलिस के संरक्षण में सभी मुख्य मार्गों पर जुलूस की अनुमति दी गई। इन्हीं याचिकाओं के निर्णयों में सर्वप्रथम धार्मिक जुलूस पर कुछ शर्तें (समय एवं रीति-रिवाज़ संबंधित) लगाई गई। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि स्थापत्य प्रथा के अनुसार धार्मिक रीतियों के द्वारा जुलूस निकालने की अनुमति 2012 से 2015 के बीच में भी उच्च न्यायालय द्वारा दी गई। उपरोक्त दोनों याचिकाओं में माननीय उच्च न्यायालय ने प्रथमतः 2012 में एवं पुनः 2015 में यह स्वीकार किया कि कालाथुर में कई दशकों से गाँव के चारों प्रसिद्ध मंदिरों के लिए धार्मिक जुलूस सभी मुख्य मार्गों से निकाले जाते रहे हैं। यह कोई नई प्रथा कालाथुर गाँव में नहीं थी। यह पाया गया कि सन् 2012 से मुस्लिम वर्ग ने धार्मिक जुलूस को लेकर न्यायालयी आपत्तियाँ शुरू की। परंतु न्यायालय ने इसे स्वीकार नहीं किया। हालाँकि जुलूस के समय के संदर्भ में एवं पुलिस व्यवस्था के संदर्भ में निर्देश अवश्य दिए थे जिससे शांति व्यवस्था बनाई जा सके। उच्च न्यायालय ने द डिस्ट्रिक्ट म्युनिसिपालिटीज़ एक्ट, 1920 (The District Municipality Act 1920) का उद्धरण देते हुए उल्लेखित किया कि इस अधिनियम की धारा 180-ए सभी व्यक्तियों को बिना धर्म, जाति या वंश के भेदभाव के मार्गों के प्रयोग की अनुमति प्रदान करती है। अगर किसी वर्ग विशेष के, किसी सार्वजनिक मार्ग के, उपयोग को इस आधार पर प्रतिबंधित कर दिया जाए कि उस मार्ग के किनारे बाहुल्य में अन्य धर्म के अनुयाई निवास करते हैं एवं उन्हीं का आधिपत्य मुख्य मार्ग के दोनों तरफ़ है। इसी कारण अन्य धर्म अनुयाई कोई गतिविधि धार्मिक या अन्य संचालित नहीं कर सकते। तो यह न्याय सम्मत नहीं होगा। यदि ऐसा किया गया तो एक दिन ऐसा आएगा कि सार्वजनिक मार्ग के किनारे रहने वाले विशेष वर्ग के लोग दूसरे समुदाय के लोगों को उस सार्वजनिक मार्ग को अन्य कार्यों के लिए भी प्रयोग करने से मना कर देंगे। यहाँ तक कि वैवाहिक समारोह एवं

मृत्यु संस्कार से संबंधित जुलूस, आवागमन एवं यातायात बंद कर दिया जाएगा जो कि संपूर्ण भारतीय समाज के लिए उचित नहीं होगा। कालाथुर गाँव के सभी मंदिर एवं धार्मिक आयोजन दशकों पुराने हैं। माननीय उच्चतम न्यायालय ने गुलाम अब्बास बनाम उत्तर प्रदेश के वाद में स्पष्ट किया गया है कि धार्मिक विश्वास एवं रीति-रिवाज़ों का अनुकरण, प्रथाओं का पालन भारतीय संविधान के अनुच्छेद 25 एवं 26 द्वारा संरक्षित मूल अधिकार का अंग है जिसको बाधित नहीं किया जा सकता। पुलिस कमिश्नर बनाम आचार्य जगदीश्वरानंद अवधूत में भी उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया कि अनुच्छेद 25 एवं 26 का विस्तार धार्मिक रीति-रिवाज़, उत्सवों एवं पूजा पद्धति पर भी है। लक्ष्मींद्र तीर्थ स्वामीयर श्री शिरूर मठ के वाद में भी इसी मत का अनुसरण किया गया था। सैफउद्दीन बनाम बांबे राज्य एवं सेशाम्मल बनाम तमिलनाडु राज्य के मामलों में न्यायालय ने अवधारित किया कि चाहे रीति रिवाज़ का कोई भाग धर्म का अभिन्न अंग है या कि नहीं परंतु यदि उनका अनुसरण प्राचीन काल से किया जाता रहा है तो उन्हें अनुच्छेद 25 का संरक्षण दिया जाएगा। केवल कुछ वर्षों से विशेषकर 2012 से अन्य धर्मानुयायियों को यदि धार्मिक जुलूस निकालना अच्छा नहीं लगता है तो केवल इसी आधार पर प्राचीन धार्मिक जुलूस जो कि कालाथुर गाँव की वार्षिक सौहार्दता एवं सहिष्णुता को स्थापित करने का आधार रहा है, बाधित करना एवं आयक्तियुक्त शर्तों को थोपना आधुनिक उदार पंथनिरपेक्षता (non radical liberal secularism) का भाग नहीं हो सकता। भारतीय संस्कृति में यह सर्वसिद्ध रहा है कि धर्म एवं राज्य को पृथक नहीं किया जा सकता जिसको की 19वीं सदी में प्रारंभ हुई पाश्चात्य बहस ने भी बीसवीं सदी के मध्य तक स्वीकार कर लिया। वर्तमान में पाश्चात्य देश भी सभी धर्मों के सामान्य प्रश्नों पर ध्यान देते हैं, न कि धर्म से पृथकता या दूरी बनाने पर, जो की सत्यतरू एवं व्यवहारतः संभव ही नहीं है, न ही था।

मोहम्मद गनी बनाम पुलिस उप निरीक्षक के मामले में खंडपीठ न्यायालय ने निर्धारित किया कि भारत एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक एवं पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है। भारतीय संविधान सभी धर्मों, जातियों एवं समुदायों के साथ सामान्य व्यवहार करता है। सभी संस्थाएँ अपने रीति-रिवाज़ों के अनुसार व्यवहार करने के लिए स्वतंत्र हैं। उन्हें अनुच्छेद 14 एवं 25 संरक्षित करते हैं। यह देश किसी एक धर्म का नहीं है बल्कि सभी धर्मों एवं मान्यताओं को समान रूप से मानता है एवं प्रश्रय देता है। बहुलवाद एवं विविधता भारतीय संस्कृति का सौंदर्य है। सकारात्मक पंथीनिरपेक्षता (हालाँकि मैं इसको भारतीय धार्मिक पंथ सापेक्षता कहना उचित समझूँगा या कि दूसरे शब्दों में धार्मिक सहिष्णुता) हमारी संस्कृति का अंग है जिसका भाव सभी धर्मों का समान आदर है जो कि सम्राट अशोक एवं अकबर आदि के द्वारा समय-समय पर अनुमोदित की जाती रही है। यह प्रारंभिक पाश्चात्य पंथनिरपेक्षता (19वीं सदी) की भाँति नहीं है जो कि राज्य एवं चर्च के पृथकता की बात करती हो।

उपर्युक्त वाद उद्धरणों को संदर्भित करते हुए विद्वान् न्यायाधीश ने अवधारित किया कि

धार्मिक जुलूस को प्रतिबंधित नहीं किया जा सकता है। प्रथम, दोनों दिवसों पर 2015 तक चली आ रही परंपरा के अनुसार जुलूस मंदिरों तक सभी मुख्य मार्गों पर होते हुए निकाला जा सकता है एवं तीसरे दिन के जुलूस के संदर्भ में याची ने स्वयं हल्दी के छिड़काव की परंपरा को न करने की स्वीकृति दे दी है। इस कारण तीसरे दिन के धार्मिक जुलूस को नहीं निकालना स्वीकार है। यही धार्मिक सहिष्णुता का उदाहरण है। दूसरे पक्ष ने असहनशीलता की दलील रखी, जिसको लेकर राज्य का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक पक्ष की सहनशीलता को कायम किया जाए एवं शांतिपूर्ण आयोजन हेतु समुचित पुलिस व्यवस्था पहले की तरह की जाए जिससे दोनों समुदायों में सौहार्द बना रह सके।

उच्च न्यायालय ने डिस्ट्रिक्ट म्युनिसिपालिटीज एक्ट 1920 की धारा 180-ए को संदर्भित करते हुए अभिव्यक्त किया कि भारतवर्ष में सभी सार्वजनिक मार्ग भी पंथनिरपेक्ष है; जो कि संवैधानिक भावना को संपोषित करते हैं, और सभी व्यक्ति एवं समुदाय के द्वारा समान रूप से प्रयोग किए जा सकते हैं। बिना किसी अवरोध के धार्मिक जुलूस सार्वजनिक मार्ग पर निकालना मूल अधिकार का अभिन्न अंग है जब तक वह विधि एवं व्यवस्था को भंग न करता हो, नैतिकता के विरुद्ध न हो या किसी के स्वास्थ्य के प्रति हानिकारक न हो। इस वाद में ऐसा कुछ भी नहीं है। इसलिए कालाथुर के हिंदू समुदाय को रीति-रिवाज़ के अनुसार जुलूस निकालना, उनका मूल अधिकार है। हिंदू समुदाय ने जितने भी स्वनियंत्रित प्रतिबंध 2012 के बाद लगा रखे हैं यवे ही भारतीय संस्कृति की धार्मिक सहिष्णुता के मूल स्रोत हैं। धार्मिक जुलूस को केवल इस आधार पर कि किसी मार्ग विशेष पर दूसरे समुदाय के लोग बहुसंख्यक रूप में रहते हैं, रोकना सर्वथा उचित नहीं है।

इस निर्णय का विश्लेषण मैं श्री लक्ष्मीकांत मित्रा जी के उद्‌बोधन के द्वारा समाप्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने 6 दिसंबर, 1948 को संविधान सभा में कहाँ कि 'पंथनिरपेक्ष राज्य' का मतलब है कि राज्य किसी धर्म या समुदाय के आधार पर किसी व्यक्ति के धार्मिक विश्वास के साथ विभेद नहीं करेगा। राज्य किसी विशेष धर्म को स्थापित करने, संरक्षित करने एवं संपोषित करने का असमान रूप से प्रयास भी नहीं करेगा। कोई व्यक्ति या समुदाय धर्म के नाम पर विशेष दर्जे का अधिकारी नहीं है। राज्य सभी धर्मों का समान रूप से आदर करेगा। यही हमारी संस्कृति भी है।

'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'

(ऋग्वेद 1-164.41)

"There is only truth (or true being) and learned person call it by many names"

❑

References

1. A Secular Age, by C. Taylor, Harvard University Press, 28 September, 2007

2. Chandu Sajan Patil And Others Vs. Kyahalchand Panamchand And Others Reported In CDJ BHC 009.
3. Freedom of Religion and the Secular State, by Russell Blackford Published by Wiley-Blackwell, February 7th 2012
4. Gulam Abbas Vs. State Of Uttar Pradesh And Others Reported In AIR 1981 SC 218
5. H.R.E. V. Sri Lakshmindra Thirtha Swamiar Of Sri Shirur Mutt [AIR 1954 SC 282 : 1954 SCR 1005]
6. Mohamed Gani Vs. The Superintendent Of Police And Others Reported In CDJ 2005 MHC 1276.
7. Mohammed Gani Vs. The Superintendent Of Police & Others Reported In CDJ 2005 MHC 1276
8. Pooja Samiti, Fulwaria Vs. State Reported In CDJ 1985 Bihar HC
9. Rigveda(http://www.holybooks.com/rig-veda/)
10. Sardar Syedna Taher Saifuddin Saheb V. State Of Bombay [AIR 1962 SC 853 : 1962 Supp (2) SCR 496]
11. Secularism : A very short introduction by Andrew Copson Oxford University Publication 2017
12. Seshammal V. State of T.N. [(1972) 2 SCC 11: AIR 1972 SC 1586]
13. Shorter Constitution of India by Durga Das Basu, Vol-I ,15th edition 2018, Lexis Nexis
14. The Commissioner of Police And Others Vs. Acharya Jagdishwarananda Avadhuta And Another Reported In 2004 (12) SCC 770
15. The Constituent Assembly Debate Vol.- VII, Sixth Reprint 2014, Lok Sabha Secretariat, New Delhi
16. The Constitution of India 1950
17. The District Municipalities Act 1920
18. Ushaben Navinchandra Trivedi & Others. Vs Bhagyalaxmi Chitra Mandir & Others., AIR 1978 Guj 13,
19. W.A. No. 2064 of 2019 Sunnath Val Jamath V. Kalathur, Perambalur District, Vs. Ramasamy Udayar, & Others.
20. W.A. No. 743 of 2019 Ramasamy Udayar, Vs. The District Collector, Perambalur District, Perambalur & Others.
21. W.P.No.23487 of 2012 By A. Nattar Basha
22. W.P.No.33288 of 2015 By Jamma Masjid Sunnath Val

डॉ. निशा केवलिया (शर्मा)

उच्च शिक्षा-गुणवत्ता एवं प्रबंधन

'शिक्षा' क्या है? इसे समझना आवश्यक है। शिक्षा का शाब्दिक अर्थ होता है सीखने एवं सिख़ाने की क्रिया परंतु अगर इसके व्यापक अर्थ को देखें तो शिक्षा किसी भी समाज में निरंतर चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया है जिसका कोई उद्देश्य होता है और जिससे मनुष्य की आंतरिक शक्तियों का विकास तथा व्यवहार को परिष्कृत किया जाता है। शिक्षा द्वारा ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि कर मनुष्य को योग्य नागरिक बनाया जाता है। शिक्षा मानव जीवन की आधारशिला है। शिक्षा ही हमें जीवन में फैले अज्ञान रूपी अंधकार से बाहर लाती है।

कहा गया है -

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय।

शिक्षा का महत्त्व हितोपदेश में भी बताया गया है --

माता शत्रुः पिता बैरी, येन बालो न पाठितः।
सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये वको यथा।।

अर्थात् ऐसे माता पिता शत्रु और बेरी की भूमिका निभाते हैं जो अपने बच्चों को शिक्षा से वंचित रखते हैं क्योंकि ऐसा बालक विद्वानों के बीच शोभा नहीं पाता जिस प्रकार बगुला हंसो के मध्य शोभा नहीं पाता।

अगर हम सीमित अर्थ में देखें तो शिक्षा का अर्थ विद्यार्थी की अंतनिर्हित क्षमताओं का विकास करके उसे मज़बूत बनाना है जिससें वह जीवन की चुनौतियों का सामना कर सके और राष्ट्रीय एवं सामाजिक विकास में योगदान दे सके। व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो आजीवन चलती है और उचित अनुचित में भेद करने की दृष्टि प्रदान करती है।

स्वामी विवेकानंद जी ने चरित्र-निर्माण को ही 'शिक्षा का अंतिम लक्ष्य' माना है, आप ने कहा है, ''हमें उस शिक्षा की आवश्यकता है, जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।''

...जो शिक्षा जनसाधारण को जीवन-संघर्ष के लिए तैयार नहीं कर सकती, जो समाज सेवा की भावना को विकसित नहीं कर सकती तथा जो शेर जैसा साहस पैदा नहीं कर सकती, ऐसी शिक्षा से क्या लाभ?

राष्ट्र पिता महात्मा गांधी के अनुसार, ''जिस शिक्षा से आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मुक्ति मिलती है, वही वास्तविक शिक्षा है। विद्यार्थी को चरित्रवान् बनाना ही शिक्षा का मुख्य

उद्देश्य है। आपके अनुसार ज्ञान साधन है और चरित्र साध्य।'' महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में कहा है -- ''मैंने सदैव हृदय की संस्कृति अथवा चरित्र-निर्माण को प्रथम स्थान दिया है तथा चरित्र-निर्माण को शिक्षा का उचित आधार माना है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में नैतिकता का अवमूल्यन स्पष्ट दिखाई दे रहा है। शिक्षा मिशन से व्यवसाय में परिवर्तित हो चुकी है। चरित्र-निर्माण जैसे प्रयास वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में नहीं दिखाई दे रहे हैं। हमारी शिक्षा नीति न तो विद्यार्थियों को नैतिक शिक्षा दे पा रही है और न ही स्वालंबी और रोज़गारोन्मुखी शिक्षा ही देने में सक्षम हो रही है। हमारे पास उच्च शिक्षा में विकास के नाम पर मात्र आँकड़ों का भंडार हैं लेकिन उसमें गुणवत्ता का पूर्ण रूप से अभाव है।

आज का विद्यार्थी औपचारिक शिक्षा जैसे -- बी.ए., बी.कॉम, बी.एस.सी., बी.बी.ए, बी.एड., बी.सी.ए., स्नातकोत्तर एम.फिल, पीएच.डी. आदि उपाधियॉ अर्जित करने के बाद भी जीवन-निर्वाह-हेतु माता पिता पर निर्भर है, तो स्पष्ट रूप से हमारी शिक्षा पद्धति दोषपूर्ण है।

उच्च शिक्षा के बाज़ारीकृत हो जाने से समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। उच्च शिक्षा एक उत्पादन की तरह व्यवसाय योग्य वस्तु के उत्पादन में परिवर्तित हो गई है। बड़े-बड़े पूँजीपति, राजनीतिज्ञ और नव धनाढ्य शिक्षा के व्यवसाय में कूद पड़े हैं और बाज़ार के नियम शिक्षा के क्रय-विक्रय की होड़ मची है।

तकनीकी शिक्षा ने एवं शिक्षा व्यवासायीकरण ने शिक्षा के वास्तविक रूप को पूर्ण रूप से बदल कर रख दिया है। उच्च शिक्षा में तकनीकी शिक्षा संस्थानों ने भवन का ढाँचा सुधारने के प्रयास किए हैं, आकर्षक फर्निचर, प्रदर्शन में भव्यता लाने का प्रयास कर शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण प्राचीन ढाँचे को ध्वस्त कर शिक्षा को गर्त में पहुँचा दिया है।

उच्च शिक्षा को बेचने की होड़ ने विक्रय कला, विज्ञापन, ग्राहक संपर्क प्रबंधन, जन-संपर्क छवि-निर्माण जैसे कार्य द्वारा बेरोज़गार की एक फ़ौज का उत्पादन कर रहा है। शिक्षा के व्यवसाय में लेन-देन क्रय-विक्रय ने आर्थिक भ्रष्टाचार के एक नए क्षेत्र के रूप में पहचान बनाई है और इसने शिक्षा के मंदिरों को कलंकित किया है।

विश्वविद्यालयों के प्रमुख कुलपति पद की गरिमा को कई बार कलंकित किया गया यह दुर्भाग्यपूर्ण है। कुलपति के पद पर बैठे किसी व्यक्ति-विशेष की निष्क्रियता, दुष्प्रवृत्ति, बेइमानी, अनैतिक चरित्र, मात्र भ्रष्टाचार का प्रतीक या प्रमाण नहीं है बल्कि यह शिक्षा व्यवस्था की संपूर्णता की घोर असफलता का प्रतीक है। सारी शिक्षा प्रणाली इतनी ध्वस्त हो चुकी है कि उसमें आमूल परिवर्तन की आवश्यकता अनिवार्य है। उच्च शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता अनिवार्य है उच्च शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन किए बिना शिक्षा में गुणवत्ता लाना संभव नहीं है।

भारत की वर्तमान अकादमीय उच्च शिक्षा की संरचना इस प्रकार है --

1. केंद्रीय विश्वविद्यालय
2. राज्य द्वारा वित्तपोषित विश्वविद्यालय

3. विश्वविद्यालय संस्थाएँ (डीम्ड विश्वविद्यालय)
4. स्वायत्तशासी महाविद्यालय
5. राजकीय महाविद्यालय
6. परिसर महाविद्यालय
7. संघटक महाविद्यालय
8. संबध महाविद्यालय
9. तकनीकी शिक्षण संस्थान
10. स्ववित्त पोषित महाविद्यालय

भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली में स्वंतत्रता के बाद से बहुत अधिक विस्तार एवं सुधार हुआ है। 1976 से पहले शिक्षा राज्यों का विशिष्ट दायित्व था। लेकिन 1976 के संविधान संशोधन द्वारा इसे समवर्ती सूची में शामिल किया गया जिससे शिक्षा अब केंद्र व राज्य सरकारों की संयुक्त ज़िम्मेदारी हो गई है।

केंद्र सरकार शैक्षिक नीतियाँ बनाने एवं उनके क्रियान्वयन पर नज़र रखने में अग्रणी भूमिका निभाती है। इसी क्रम में 1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई.) तथा वह कार्यवाही कार्यक्रम (पी.ओ.ए.) शामिल हैं, जिसे 1992 में अद्यतन किया गया।

यशपाल कमेंटी और राष्ट्रीय ज्ञान कमीशन ने विश्वस्तरीय 14 नवाचार विश्वविद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव रखा है। 10 नए एन.आई.टी. खोलने के प्रस्ताव को अनुमोदित कर दिया गया है। शैक्षिक रूप से पिछड़े ज़िलों के रूप में अभिचिह्नित 374 ज़िलों में से ऐसे हर ज़िले में मॉडल डिग्री कॉलेज स्थापित करने की योजना आरंभ की गई है। जहाँ उच्च शिक्षा के लिए सकल नामांकन अनुपात (जी.ई.आर.) राष्ट्रीय जी.ई.आर. से कम है। कमज़ोर वर्गों एवं अल्पसंख्यकों की पर्याप्त आबादी वाले ज़िलों में स्थित उच्च शिक्षा संस्थाओं में 150 महिला छात्रावास स्वीकृत किए गए हैं। शिक्षा के क्षेत्र में चौतरफ़ा विकास सुनिश्चित करने के लिए 26 सितंबर, 1985 को मानव संसाधन विकास मंत्रालय बनाया गया।

आज़ादी के समय हमारे पास 20 विश्वविद्यालय तथा 500 महाविद्यालय थे जो वर्तमान में 789 विश्वविद्यालय तथा 37204 महाविद्यालय एवं 11443 इनके समकक्ष संस्थाएँ हैं। (2017 तक विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अनुसार) दूरस्थ शिक्षा द्वारा शैक्षणिक विकास की कोशिश 'इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय' द्वारा प्रारंभ की गई।

2009-10 में तकनीकी शिक्षा के विकास हेतु लगभग 65 संस्थानों को वित्तीय सहायता केंद्र ने प्रदान की। आई.आई.एस., बैंगलुरू में प्रयोगशाला सहित अन्य ढाँचागत सुविधाओं के सुधार हेतु 100 करोड़ का विशेष अनुदान मंजूर किया गया।

कोलकता और पुणे में दो भारतीय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान संस्थाओं की स्थापना की मंजूरी दी गई ।

28 दिसंबर, 1953 को उच्च शिक्षा हेतु विश्वविद्यालय समन्वय मानदंडों का निर्धारण और

अनुरक्षण करने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का भी गठन किया गया जो आज भी लगातार कार्य कर रहा है।

अनुसंधान को बढ़ावा देने हेतु भारतीय ऐतिहासिक अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एच.आर. 1972), भारतीय उच्चतर अनुसंधान परिषद् (आई.आई.एन.एस. 1965), भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद् (आई.सी.एच.एस.आर.) आदि संस्थान कार्य कर रहे हैं।

भारतीय प्रौद्योगिकी शिक्षा संस्थान, (आई.आई.टी.) भारतीय प्रबंधन संस्थान (आई.आई.एम) भारतीय विज्ञान संस्थान (आई.आई.एस.जी.) बैंगलोर, भारतीय सूचना प्रोद्योगिकी (आई.आई.आई.टी.) इलाहाबाद, अमेठी, जबलपुर, 18 राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान आदि और वित्तीय अनुदान पश्चात् रीजनल इंजीनियरिंग कॉलेज आदि।

इनके अतिरिक्त, वर्तमान में कई सारे विश्वविद्यालय दूरस्थ शिक्षण हेतु कार्यरत् हैं जो सुदूर भारत में बैठे व्याक्ति तक भी शिक्षा आसानी से पहुचाने हेतु स्थापित हुए हैं, महिला महाविद्यालय हैं, कृषि विश्वविद्यालय हैं और भी अनेक क्षेत्रों से जुड़े विश्वविद्यालय और महाविद्यालय कार्य कर रहे हैं।

उपरोक्त सभी आँकड़ों का विवरण हमें आज़ादी के बाद हुए शैक्षणिक विकास के प्रयासों से परिचित कराता है साथ ही हाल ही में हमारे प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा उच्च शिक्षा के बारे में नवीन शिक्षा नीति 2020 की घोषणा एक उम्मीद जगाती हैं।

भारत में उच्च शिक्षा के विकास की सबसे बड़ी समस्या योग्य एवं निष्ठावान् पूर्णकालिक प्राध्यापकों की कमी है। स्थायी प्राध्यापकों की कमी के चलते प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में भी शिक्षा की गुणवत्ता गिरती जा रही है।

विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालय उच्च शिक्षा में प्रयोग कर रहे हैं। शिक्षण हेतु अतिथि विद्वानों की, संविदा प्राध्यापकों की नियुक्ति दैनिक श्रमभोगी के समान की जा रही है। इस तरह की नियुक्तियों में भी भाई-भतीजावाद, राजनीतिक गठजोड़, आर्थिक समीकरणों के प्रभाव ने शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रश्नचिन्ह लगा दिए हैं।

अनुसंधान कार्य केवल 'टेबल रिर्सच' तक सीमित रह गया है और इसका एक मात्र उद्देश्य नौकरी प्राप्त करना या वरिष्ठ वेतनमान प्राप्त करना रह गया है।

शिक्षा के निजीकरण के चलते शिक्षण हेतु शिक्षकों से मोल-भाव कर नियुक्त किया रहा है और निर्धारित मापदंडों की पूर्ति मात्र कागज़ों पर कर आर्थिक लेन-देन के माध्यम से संबद्धता की शर्तों की पालना निजी शिक्षा व्यवसायियों द्वारा कर दी जाती है।

विश्वविद्यालय के कुलपति के पास महत्त्वपूर्ण शक्तियाँ होती हैं जिसमें आर्थिक पक्ष सबल होता है। इसी वजह से कई बार यह भ्रष्टाचार एवं विवाद का कारण बन कर विश्वविद्यालीय व्यवस्थाओं को दूषित कर देते है और इसका प्रभाव पूरी शिक्षा व्यवस्था पर स्पष्ट दिखाई देता है।

नवीन शिक्षा नीति में उच्च शिक्षा से संबंधित प्रावधान : गुणवत्ता हेतु एक प्रयास

नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत उच्च शिक्षण संस्थानों में 'सकल नामांकन अनुपात'

(Gross Enrolment Ratio) को 26.3 प्रतिशत (वर्ष 2018) से बढ़ाकर 50 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य रखा गया है, इसके साथ ही देश के उच्च शिक्षण संस्थानों में 3.5 करोड़ नई सीटों को जोड़ा जाएगा।

नई शिक्षा नीति 2020 के तहत स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया गया है, इसके तहत 3 या 4 वर्ष के स्नातक कार्यक्रम में छात्र कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे और उन्हें उसी के अनुरूप डिग्री या प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाएगा (1 वर्ष के बाद प्रमाण-पत्र, 2 वर्षों के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्षों के बाद स्नातक की डिग्री तथा 4 वर्षों के बाद शोध के साथ स्नातक)।

विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थानों से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप से सुरक्षित रखने के लिए एक 'एकेडमिक बैंक ऑफ क्रेडिट' (Academic Bank of Credit) दिया जाएगा, ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके।

नई शिक्षा नीति के तहत एम.फिल. (M-Phil) कार्यक्रम को समाप्त कर दिया गया।

भारतीय उच्च शिक्षा आयोग

नई शिक्षा नीति (NEP) में देश-भर के उच्च शिक्षा संस्थानों के लिए एक एकल नियामक अर्थात् भारतीय उच्च शिक्षा परिषद् (Higher Education Commision of India) की परिकल्पना की गई है जिसमें विभिन्न भूमिकाओं को पूरा करने हेतु कई कार्यक्षेत्र होंगे। भारतीय उच्च शिक्षा आयोग चिकित्सा एवं क़ानूनी शिक्षा को छोड़ कर पूरे उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक एकल निकाय (Single Umbrella Body) के रूप में कार्य करेगा।

भारतीय शिक्षा आयोग के कार्यों के प्रभावी निष्पादन हेतु चार निकाय --

राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा नियामकीय परिषद् (**National Higher Education Regulatroy Council & NHERC**) : यह शिक्षक शिक्षा सहित उच्च शिक्षा क्षेत्र के लिए एक नियामक का कार्य करेगा।

सामान्य शिक्षा परिषद् (**General Education Council**) : यह उच्च शिक्षा कार्यक्रमों के लिए अपेक्षित सीखने के परिणामों का ढाँचा तैयार करेगा अर्थात् उनके मानक निर्धारण का कार्य करेगा।

राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद् (**National Accreditation Council**) : यह संस्थानों के प्रत्यायन का कार्य करेगा जो मुख्य रूप से बुनियादी मानदंडों, सार्वजनिक स्व-प्रकटीकरण, सुशासन और परिणामों पर आधारित होगा।

उच्चतर शिक्षा अनुदान परिषद् (**Higher Education Grants Council**) : यह निकाय कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के लिए वित्तपोषण का कार्य करेगा।

देश में आई.आई.टी. (IIT) और आई.आई.एम. (IIM) के समकक्ष वैश्विक मानकों के 'बहुविषयक शिक्षा एवं अनुसंधान विश्वविद्यालय' (Multidisciplinary Education and

Reserach Universities) की स्थापना की जाएगी।

निष्कर्ष एवं सुझाव : डॉ. एच.एस. पानेस का कहना है कि ''इस्पात का कारख़ाना उस समय तक अर्थहीन हैं, जब तक उसके लिए आवश्यक इंजीनियर, तकनीशियन, कुशल कारीगर एवं श्रेष्ठ प्रबंधक आदि का प्रबंधन न किया जाए।''

राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली का मुख्य कार्य, देश की उत्पादन प्रवृत्तियों हेतु योग्य कार्यकर्ता उपलब्ध कराना है, इस निमित दिशापरक आवश्यकता यह है कि शिक्षा प्रणाली को राष्ट्र की उत्पादनीय आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया जाए। इस प्रकार की आवश्यकताओं और रोज़गारोन्मुख तथा नैतिक शिक्षण की अपेक्षाओं से शिक्षा में गुणवत्ता नियंत्रण, गुणवत्ता आश्वासन एवं संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन जैसी अवधारणाओं का जन्म हुआ है।

आज वही शैक्षिक संस्थान सार्थक व प्रासंगिक है, जो लक्ष्यपरक चुनौतियों का सामना करने वाले नौजवानों को तैयार करते हैं। शैक्षिक उत्पादों की उत्कर्षता ही राष्ट्र के अन्य उत्पादों की उत्कृष्टता का आधारभूत घटक होती है, इसीलिए राष्ट्र के शैक्षिक व्यय को निवेश की संज्ञा दी गई है।

प्रो. ब्लाग मार्क ने अपनी पुस्तक 'इन्वेस्टमेंट टू दि इकोनोमिक्स आफ एजूकेशन' में शिक्षा को आर्थिक जगत् का शत्-प्रतिशत लाभ देने वाला विवेकशील अनिवार्य एवं आधारभूत विनियोग कहा है। मार्क का मानना है कि ''शिक्षा के क्षेत्र में लगाया गया धन राष्ट्र को बहुआयामी प्रतिफल में एक आवश्यक घटक का कार्य भी करता है।''

आज जब शिक्षा सेवा से व्यवसाय बन कर समाज में अपनी पहचान बना ही चुकी है जो यह व्यवसाय विवेकपूर्ण और नैतिक संसाधानों से किया जाना आवश्यक हो गया है। हम नैतिकतापूर्ण प्रकिया से ही शिक्षा प्रणाली के मूल्यपरक एवं रोज़गारोन्मुख, गुणवत्ता से परिपूर्ण उद्देश्य को प्राप्त कर सकेंगे। हमें सर्वप्रथम योग्य, कर्मठ एवं नैतिक मूल्यों वाले पूर्णकालिक शिक्षकों की नियुक्ति करना चाहिए।

1. वर्तमान में अनुसंधान घटक शिक्षा हमारी अनिवार्य आवश्यकता है। अतः वास्तविक अनुसंधान को प्रोत्साहित किया गया।
2. अतिथि विद्वान् एवं अंशकालिक नियुक्तियों की व्यवस्था को समाप्त करना चाहिए।
3. कुलपतियों की नियुक्ति की प्रकिया में पारदर्शिता लाना चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में ग़ैर-शैक्षणिक पदों पर तुरंत पर्याप्त नियुक्तियाँ कर शिक्षण कार्य हेतु प्राध्यायपकों को ग़ैर-शैक्षणिक कार्यो से मुक्त रखना चाहिए।
5. निजी विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों को मान्यता देने के कार्यों में निर्धारित संस्थाओं और गुणवत्ता मानक प्रदान करने वाली संस्थाओं को पूर्ण इच्छाशक्ति के साथ मापदडों की पूर्ति करवानी चाहिए।
6. दूरस्थ शिक्षण संस्थाओं को औपचारिक नहीं; बल्कि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने हेतु ईमानदार प्रयत्न करना चाहिए।

7. उच्च शिक्षा व्यवस्था को विकेंद्रीकृत किया जाना चाहिए जिससें एकाधिकार पर नियंत्रण होगा और कार्यभार में भी कमी होगी।
8. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को निरंतर अपनी नज़र उन संस्थानों पर बनाए रखना चाहिए जो अनुदान प्राप्त कर उसका समुचित उपयोग नहीं करते हैं ताकि वे नियंत्रित होकर अनुदान का उपयोग सहीं तरह से करे।
9. वेतनमान का उचित निर्धारण कर समय पर वेतन भुगतान किया जाना चाहिए जिससें निजी कोचिंग संस्थानों पर प्रतिबंध लगाया जा सके और विद्यार्थियों को गुमराह होने से बचाया जा सके।
10. पाठ्यक्रम उद्देश्यपरक, व्यावहारिक एवं रोज़गारोन्मुख हों।
11. शिक्षा में सभी स्तरों पर नैतिक शिक्षा अनिवार्य रूप से प्रदान की जाए।
12. उच्च शिक्षा विभाग को बार-बार शिक्षा प्रणाली एवं परीक्षा पद्धति में प्रयोग से भी बचना चाहिए ताकि योग्य विद्यार्थियों का चयन हो न कि असंख्य अयोग्य विद्यार्थियों का चयन।
13. नवीन शिक्षा नीति के क्रियान्वयन हेतु समुचित आर्थिक प्रबंधन, पूर्णकालिक एवं प्रशिक्षित शिक्षक अनिवार्य आवश्यकता है अतः नवीन शिक्षा नीति का क्रियान्वयन दृढ़ इच्छा-शक्ति के साथ किया जाए।

यह सच है कि सत्ता भ्रष्टाचारी होती है और अगर वह निरपेक्ष है तो संपूर्ण रूप से व्यक्ति को भ्रष्ट कर सकती है।

अतः पद को भ्रष्ट होने से बचाने के लिए और शिक्षा की शुचिता को बनाए रखने तथा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा व्यवस्था के लिए सरकार को कुछ ठोस क़दम उठाकर व्यवस्था को परिवर्तित करना चाहिए। इस निमित शैक्षिक सेवा संस्थानों द्वारा भी यदि समसायिक स्वरूप में वैश्विक आयाम, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, क्षेत्रीय आयाम एवं बाज़ारीकरण की पृष्ठभूमियों को ध्यान में रखकर गुणवत्ता की सुनिश्चितता की अवधारणा को अपनाया जाता है तो यह उनका एक समझदारी भरा क़दम होगा, जिसकी आज महती आवश्यकता है।

आज शिक्षा के संपूर्ण गुणवत्ता प्रबंधन के क्षेत्र में शिक्षा केवल संगठनात्मक एवं संस्थानिक, सोपानिक प्रकल्प ही शामिल नहीं हैं, बल्कि दुरस्थ शिक्षा, मूल्य व शांति शिक्षा, समेकित शिक्षा, किशोरावस्था-शिक्षा, पर्यावरण शिक्षा, कौशल शिक्षा, स्वास्थ्य शिक्षा, पारिवारिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा एवं अल्पसंख्यकों की शिक्षा जैसी अनेक आवश्यकता आधारित उपागम शामिल हैं। अतः इनकी गुणवत्ता के स्तर पर ही 'शैक्षिक उत्कर्ष' का उदय संभव है, और संभवतः तभी हम अपनी प्राचीन शैक्षणिक उत्कृष्टता को भी प्राप्त कर सकें।

❑

डॉ. ज्योत्सना शर्मा

भारतीय परिवेश में महिलाओं के बदलते आयाम

भारतीय समाज सदा से ही द्वंदात्मक स्थिति में रहा है। एक ओर तो विकास के रथ पर बैठकर हर दिशा में अग्रसर अपने गौरव का डंका बजा रहा है, वहीं दूसरी ओर एक समाज अभी भी ऐसा है जो मुख्य धारा से विलग है। किसी भी समाज की उन्नति और पतन बहुत से कारकों पर निर्भर करती है। भारत जैसे विविधता से भरपूर देश में यह निर्णय करना थोड़ा कठिन है। महान् दार्शनिक प्लेटो का मानना था कि सभी मनुष्य अपूर्ण हैं, इसीलिए उन्हें राज्य के रूप में संगठित-सुनियोजित होने की आवश्यकता पड़ती है। भारतीय समाज भी कई धर्म, जाति, भाषा, नस्ल और अलग-अलग तरह के भौगोलिक भू-भाग में रहने वालों से बना है। इतनी विविधता और विभिन्नता में प्रत्येक समाज की अपनी संस्कृति, परंपराएँ और रीति-रिवाज़ हैं। इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से लोक-व्यवहार पर देखने को मिलता है। उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पूर्व में अरुणाचल प्रदेश से लेकर पश्चिम में राजस्थान तक अनेक प्रकार की विविधताओं से भरपूर यह देश अपनी एक निराली छवि विश्व पटल पर अंकित करता है।

समाज के लिए व्यक्ति और व्यक्ति के लिए परिवार सबसे महत्त्वपूर्ण कारक होता है। प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी परिवार का अंग है। प्रायः परिवार के इर्द-गिर्द ही हमारा संपूर्ण जीवन घूमता है। एक बेहतर समाज के निर्माण में परिवार का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। एक आदर्श परिवार पुरुष, स्त्री और बच्चों के साथ-साथ बड़े बुज़ुर्गों के आपसी समन्वय और संबंधों से निर्मित होता है। जब हम परिवार के प्रकारों के विषय में चर्चा करते हैं, तो बतौर समाजशास्त्री परिवारों को कई आधार में वर्गीकृत किया जाता है। जैसे एकल परिवार, पितृ सत्तात्मक परिवार, माता सत्तात्मक परिवार, संयुक्त परिवार। सभी प्रकार के परिवारों में घर की व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने का काम महिलाओं द्वारा किया जाता है। घर में रहने वाली महिलाएँ बच्चों के साथ-साथ बुज़ुर्गों का भी बख़ूबी ध्यान रखती हैं और इसी व्यवस्था के चलते ही घर के पुरुष अपनी नौकरी या व्यावसायिक दायित्वों का निर्वाह कर पाते हैं। परंतु धीरे-धीरे समाज और सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन आया है। मध्यम वर्ग तेज़ी से उभर कर आया है और इसी के साथ महिलाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के सुअवसर मिले जिससे वे आर्थिक रूप से सक्षम हुई हैं।

एक ओर आदर्श परिवार की परिकल्पना की जाए तो हम पाएँगे कि पहले भी महिलाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं परंतु नौकरी करना उनके लिए आवश्यक आवश्यकता नहीं थी। उनका

दायित्व एक अच्छे घर में विवाहोपरांत घर को सुव्यवस्थित रखने तक और उससे जुड़े सदस्यों का ध्यान रखने तक सीमित था। यदि किसी अपरिहार्य स्थिति वश महिलाओं को घर परिवार के भरण-पोषण हेतु नौकरी करनी भी पड़ी तो वह केवल शिक्षण कार्य को ही प्राथमिकता देती थीं। धीरे-धीरे महिलाओं की स्थिति अपने ही परिवारों में दोयम दर्जे की होती चली गई। यह किसी विडंबना से कम नहीं। जिस देश में शिव के साथ शक्ति का पूजन होता है, जहाँ विद्या हेतु माँ सरस्वती का आरधन हो, धन और वैभव के लिए महालक्ष्मी का पूजन हो और शक्ति के लिए माँ काली की उपासना हो उस देश में अपने घर में विद्यमान इन्ही स्वरूपों में विराजित स्त्री की अनदेखी समझ नहीं आती। आज भी माता-पिता केवल विवाह करने के उपरांत अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझ लेते हैं। ससुराल में यह अपेक्षा की जाती है कि वधू हर प्रकार से और हर कार्य में दक्ष हो। परंतु घर से संबंधित किसी भी निर्णय लेने में उनकी उपस्थिति को पूरी तरह से नकार दिया जाता है। इस कारण महिलाएँ सक्षम, सर्वगुण संपन्न होने पर भी अपने ही घरों में उपेक्षित महसूस करती हैं और साथ ही असुरक्षा की भावना से ग्रसित हो जाती हैं। क्या यह ज़रूरी नहीं कि घर का प्रत्येक सदस्य उसकी अस्मिता और सम्मान का ध्यान रखे? इसका कुपरिणाम यह होता है कि बच्चे भी अपनी दादी, बहन, माँ आदि को अपमानित करने से चूकते नहीं। उनकी कही किसी बात को गंभीरता से नहीं लेते। धीरे-धीरे ये बर्ताव उनके व्यवहार का अहम् अंग बन जाता है और भविष्य में वे सभी स्त्रियों के प्रति वही भाव रखते हैं। आज समाज में महिलाओं के प्रति बढ़ते अपराध चीख-चीख कर यही कहानी बयाँ कर रहे हैं। आए दिन किसी भी आयु की बच्ची या महिला से बलात्कार, एसिड अटैक, दहेज प्रताड़ना, घरेलु हिंसा आदि ख़बरों से अख़बार भरे रहते हैं। पर क़ानूनी प्रक्रियाओं के चलते फ़ैसले के इंतज़ार में मामले लंबित रहते हैं। यह अत्यंत गंभीर विषय है और इसे गंभीरता से लिया जाना चाहिए। हम किस प्रकार के समाज का निर्माण कर रहे हैं जो बालिका के जन्म से ही चिंताग्रस्त हो जाते हैं कि अब इसकी सुरक्षा किस प्रकार की जाए?

आज समाज में बढ़ते अपराधों का एक बहुत बड़ा कारण हमारी बिगड़ती हुई परिवार प्रणाली और उससे जुड़ी व्यवस्था है। एक आदर्श परिवार ही आदर्श नागरिक तैयार करता है, जिससे एक मज़बूत राष्ट्र का निर्माण होता है। एक शिक्षित माँ पूरे घर का आधार बनकर मज़बूती प्रदान करती है। परंतु पितृ सत्तात्मक परिवार का अर्थ कुछ इस तरह से विकृत हुआ जिसने महिलाओं को मात्र शोषण और जबरन् थोपे गए निर्णयों को मानने के लिए बाध्य कर दिया। स्वामी विवेकानंद जी का उद्घोष वाक्य था कि तुम मुझे सौ शिक्षित माताएँ दो, मैं तुम्हें एक अच्छा राष्ट्र दूँगा। क्या महिलाएँ सम्मान और सुरक्षा की हक़दार नहीं हैं? क्या महिलाएँ अच्छे स्वास्थ्य, अच्छी शिक्षा और अच्छे पालन पोषण की हक़दार नहीं हैं? ये प्रश्न हर व्यक्ति को स्वयं से पूछना चाहिए। आज इक्कीसवीं सदी में भी महिलाएँ अपनी दोयम स्थिति को लेकर पुरानी बीमार रूढ़िवादी मानसिकता, अंधविश्वास, रीति-रिवाज़ और परंपराओं के भँवर जाल में फँसी अपने अस्तित्व को तलाश रही हैं। गाँव, कस्बों और उनसे सटे शहरों में स्थिति अत्यंत गंभीर है। रूढ़िवादिता और

अंधविश्वास के चलते आज भी महिलाएँ बहुत सी गंभीर स्थितियों का सामना कर रही हैं।

महानगरों की जहाँ संभ्रांत और मध्यम परिवारों की महिलाएँ बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ी हैं और हर क्षेत्र में अपना परचम फहरा रही हैं। भूमंडलीकरण और औद्योगिकीकरण के अंतर्गत एक नए भारत का निर्माण हो रहा है जिसे हम इंडिया भी कह रहे हैं। महानगरों में शहरीकरण के साथ ही हर क्षेत्र में तेज़ी से विस्तार हुआ है चाहे वह शिक्षा हो, विज्ञान, प्रौद्योगिकी या चिकित्सा। इस विस्तार का प्रभाव इंडियन फैमिलीज़ पर बखूबी देखने को मिलता है। महिलाओं के लिए हर क्षेत्र में नए सोपान खुले हैं। जहाँ एक ओर उच्च शिक्षा प्राप्त कर महिलाएँ ब्यूरोक्रेसी में अपना लोहा मनवा रही हैं वहीं राजनीति में लीडरशिप कौशल से लीड कर रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में अपने शोध और ज्ञान से नए सुधार ला रही हैं तो चिकित्सा के क्षेत्र में अपनी सेवा से अनगिनत रूग्णों का मन जीत रही हैं। वकालत, बैंकिंग, सेना, पुलिस का क्षेत्र हो या प्रौद्योगिकी का, हर ओर अपनी प्रतिभा से महिलाओं ने अपने चहुँमुखी विकास और सशक्तिकरण का परिचय दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं के प्रति समाज के हर वर्ग में एक सकारात्मक दृष्टिकोण पनपा है जो उनके प्रति 'नारी तू नारायणी' के भाव को परिलक्षित करता है। समाज की मुख्य धारा से जुड़ी आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति सजग और सचेत है।

एक अन्य बहुत विशेष समूह ऐसी महिलाओं का भी है जो किसी कारणवश अपनी शिक्षा पूर्ण नहीं कर सकीं पर किसी-न-किसी रूप में हम उनकी भागीदारी को कम करके नहीं आँक सकते। ऐसी सभी महिलाएँ आज पैट्रोल पंप, बड़े-बड़े मॉल में मार्केटिंग करती, खादी ग्रामोद्योग, हथकरघा, शिल्पकारी, कशीदाकारी, ऑटो चालक, कृषक, कैब चालक आदि के रूप में नज़र आ रही हैं यहाँ तक की श्रम एवं कंस्ट्रक्शन साईटों पर प्रत्यक्ष रूप से देखी जा सकती हैं। 'श्रम एवं रोज़गार मंत्रालय' के अनुसार महिलाएँ भारतीय कार्य बल का एक अभिन्न अंग हैं। भारत सरकार द्वारा ऐसे बहुत-सी योजनाएँ लाई गई हैं जिनके द्वारा प्रत्येक वर्ग की महिलाओं को सक्षम और स्वावलंबी बनने में मदद मिल रही है। आज के परिप्रेक्ष्य में इस बात पर गहनता से विचार किया जाना चाहिए कि जब हर प्रकार से महिलाओं की भागीदारी में कहीं कोई कमी नहीं है तो लिंग भेद जैसी धारणाओं के चलते महिलाओं के अस्तित्व को नकारा न जाए।

आज ज़रूरत है तो इस बात पर ध्यान देने की है कि चाहे हम महानगरों में हों या गाँव में, महिलाओं को पूर्ण रूप से घर और बाहर किसी भी स्थान पर किसी भी प्रकार की असुरक्षा न हो। इसमें पुरुषों की भागीदारी भी बहुत अहम है। सभी को मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि घर में महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ हो तथा कार्यस्थल पर लिंग भेद, किसी भी प्रकार का शोषण, हिंसा, आपत्तिजनक टिप्पणियाँ आदि समस्याओं से मुक्त समाज का निर्माण हो। सभी वर्ग की महिलाओं को सशक्त भारत में विकास और वृद्धि के सुअवसर प्राप्त हों। सभी सशक्त महिलाएँ मिल कर कमज़ोर और शोषित वर्ग की महिलाओं को संबल प्रदान करने की पुरज़ोर कोशिश करें, तभी सच्चे अर्थों में 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' का भाव स्पष्ट हो सकेगा।

❑

डॉ. नीता बोरा शर्मा

संवैधानिक जीवन के वैविध्य एवं भविष्य दर्शन का प्रतीक : भारत के संविधान की प्रस्तावना

भारत का संसदीय लोकतंत्र दुनिया का सर्वाधिक अनूठा लोकतंत्र है। संविधान निर्माताओं ने स्वतंत्रता के पश्चात् ब्रिटिश संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली को अपनाकर जनता को शासन सत्ता का वास्तविक कर्णधार बनाया। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान इस बात को बार-बार स्वीकारा गया था कि ब्रिटिश संसद द्वारा निर्मित संविधान भारतीय जन आकांक्षाओं के विपरीत होगा। 1922 में महात्मा गांधी ने कहा कि स्वराज्य का अर्थ है जनप्रतिनिधियों द्वारा कायम की गई ऐसी व्यवस्था जो जनता की आकांक्षाओं और आवश्यकता के अनुरूप हो। उनके कहने का तात्पर्य यही था कि भारत का राजनीतिक भाग्य भारतीय स्वयं बनाएँगे। इसीलिए भारत में संसदीय लोकतंत्र अपनाकर संविधान की प्रस्तावना की मनसा हम भारत के लोग तथा संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न लोकतांत्रिक पंथ निरपेक्ष गणराज्य की संकल्पना को साकार किया गया।

लोकतंत्र 19वीं सदी तक केवल एक राजनीतिक आदर्श था परंतु इस सदी में लोकतंत्र के सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक पहलुओं का भी विकास हुआ है। आज वह एक जीवन दर्शन बन गया है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना पंडित नेहरू द्वारा बनाए एवं संविधान सभा द्वारा अपनाए गए उद्देश्य प्रस्ताव पर आधारित है। जिसे 42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा संशोधित किया गया और समाजवादी और पंथनिरपेक्ष शब्द जोड़ा गया। संविधान की प्रस्तावना के मूल तत्व में प्रथम संविधान के अधिकार का स्रोत है कि संविधान भारत के लोगों से शक्ति अधिकृत करता है। इन मूल तत्व में दूसरी बात जो स्वीकारी गई है वह है कि भारत की प्रकृति संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक और गणतांत्रिक राज व्यवस्था है तीसरी न्याय स्वतंत्रता समता व बंधुत्व संविधान के उद्देश्य हैं।

संविधान की प्रस्तावना में बहुत ही भव्य एवं उदात्त शब्दों का प्रयोग किया गया है। इसके द्वारा उन उच्चतम मूल्यों को साकार करने का प्रयास है जिनकी प्रकल्पना मानव विवेक तथा अनुभव अब तक कर पाया है। हम भारत के लोग शब्द हमें अमेरिका के संविधान की प्रस्तावना की आरंभिक शब्दों की याद दिलाते हैं। परंतु वहाँ 'हम संयुक्त राज्यों के लोग' का उल्लेख मिलता है। वहाँ राष्ट्र के अखंड लोगों का उल्लेख नहीं किया गया। अमेरिका के संविधान की भाँति भारत के संविधान को राज्यों के अनुसमर्थन की कोई ज़रूरत नहीं है। इसीलिए संविधान

निर्माताओं ने यह निष्ठापूर्वक स्पष्ट किया कि हम लोग भारत के लोग है। संप्रभुता भारत के सभी लोगों की है न कि अलग-अलग नागरिकों की। कहने का तात्पर्य यह कि हमारे संविधान की प्रस्तावना के माध्यम से इस बात पर बल दिया गया कि हमारा राष्ट्र एक है। हमारा संविधान एक है। प्रस्तावना में वर्णित आदर्श इसी बात की तरफ़ संकेत करते हैं।

सबसे पहली बात सम्प्रभुता की कही गई है इसका आशय यही है कि भारत न किसी अन्य देश पर निर्भर है न किसी अन्य देश का अधिराज्य है। संविधान निर्माताओं ने हमेशा के लिए यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि हमारे देश की कार्य-प्रणाली में संप्रभुता स्वयं लोगों में निहित है। हमारे संविधान के अंतर्गत समाजवाद शब्द को इस भाव से रखा गया जो लोकतांत्रिक समाजवाद की परिकल्पना को साकार करे। इसीलिए प्रस्तावना में सभी नागरिकों को आर्थिक न्याय, प्रतिष्ठा तथा अवसर की समानता को दिलाने के संकल्प का उल्लेख किया गया था पर 1976 में 42वें संविधान संशोधन द्वारा समाजवादी शब्द का समावेश किया गया। समाजवाद का आशय यही था कि विषमता का अंत हो जाये जिसमें प्रतिष्ठा एवं जीवनयापन के स्तर पर असमानता ना हो। किंतु आर्थिक उदारीकरण, विदेशी कंपनियों का खुला प्रवेश, विदेशी पूँजी निवेश और खुले बाज़ार की प्रतिस्पर्धा की उपस्थिति प्रायः समाजवादी मूल्यों का दावा नहीं कर सकती। मूल प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द नहीं था यह शब्द भी 42वें संविधान संशोधन के बाद जोड़ा गया। जैसाकि उच्चतम न्यायालय ने 1974 में कहा था, यद्यपि धर्मनिरपेक्ष राज्य शब्द का स्पष्ट रूप से संविधान में उल्लेख नहीं किया गया था पर इसमें कोई संदेह नहीं कि संविधान निर्माता ऐसे राज्य की स्थापना करना चाहते थे इसीलिए संविधान के अनुच्छेद 25 से 28 तक धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया गया है। यद्यपि प्रस्तावना में पंथनिरपेक्ष शब्द का प्रयोग करने के अलावा हमारे संविधान में अन्य किसी भी जगह यह स्पष्ट नहीं किया गया कि धर्म को राजनीति के साथ नहीं मिलाने दिया जाएगा या धार्मिक समस्याओं, निधियों और स्थानों का प्रयोग राजनीतिक उद्देश्यों के लिए नहीं करने दिया जाएगा। यह भी तय नहीं है कि कहाँ 'पंथ' शब्द का प्रयोग होगा और कहाँ 'धर्म' अथवा 'संप्रदाय' का। (सुभाष कश्यप पेज 53। अतः जो भी हो, भारतीय संवैधानिक विधि में 'पंथनिरपेक्ष' शब्द का एकमात्र प्रवर्तनीय निर्वचन वही होगा जो संविधान के विभिन्न प्रावधानों जैसे अनुच्छेद 14, 15, 16, 19, 25 से 28 तक समझा जा सकता है। संविधान में एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का विचार दिया गया जो सांप्रदायिक संघर्षों से मुक्त होगी तथा जिसका आधार सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक न्याय होगा। सच्चे लोकतंत्र में आर्थिक शोषण के लिए कोई स्थान नहीं है। एक लोकतंत्रीय देश में नागरिकों को उनके मूलभूत मानव अधिकार अवश्य प्राप्त होने चाहिए पर संविधान की प्रस्तावना की मनसा के अनुरूप क्रियान्वयन की बात करें तो भारत में अमीर और ग़रीब की खाई बहुत बड़ी है। भारत के अंसगठित क्षेत्र के अप्रवासी कामगारों की बड़ी तादाद कोरोना काल में आर्थिक प्रकोप की भागी बनी।

संविधान की प्रस्तावना में एक लोकतांत्रिक राजव्यवस्था की परिकल्पना की गई है। इसमें

प्रतिनिधि संसदीय लोकतंत्र की व्यवस्था है जिसमें कार्यपालिका अपनी सभी नीतियों और कार्यों के लिए व्यवस्थापिका के प्रति जवाबदेह है। न्यायपालिका की स्वतंत्रता भेदभाव का अभाव क़ानून की सर्वोच्च लोकतंत्र का स्वरूप है। लेकिन 25 नवंबर, 1949 को संविधान सभा में डॉ. अंबेडकर के द्वारा जो समापन भाषण दिया गया वह उल्लेखनीय है -- ''राजनीतिक लोकतंत्र तब तक स्थायी नहीं बन सकता जब तक उसके मूल में सामाजिक लोकतंत्र नहीं हो, ऐसा लोकतंत्र जो स्वाधीनता, समानता, भ्रातत्व को मान्यता देता हो और यह तीनों को अलग करके नहीं देखा जा सकता ''यदि इसमें से एक को भी अलग कर दिया जाए तो लोकतंत्र का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। स्वाधीनता को समानता से अलग नहीं किया जा सकता, समानता को स्वाधीनता से और स्वाधीनता और समानता को भ्रातत्व से अलग नहीं किया जा सकता।'' डॉ. अंबेडकर की यह बात निश्चित रूप से सच है और समाज में परिलक्षित हो रही है। प्रस्तावना का अगला आदर्श गणराज्यीय स्वरूप है। यह संकल्पना उस राज्य का प्रतीक है जिसमें जनता सर्वोच्च होती है, कोई विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग नहीं होता। इसमें कोई वंशानुगत शासक नहीं होता तथा राज्यों का अध्यक्ष एक निश्चित अवधि के लिए चुना जाता है। संविधान की प्रस्तावना में न्याय तीन भिन्न रूपों में शामिल है सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक। जिस हेतु सुरक्षा मौलिक अधिकार और नीति निर्देशक सिद्धांतों के द्वारा की जाती है सामाजिक न्याय हर व्यक्ति के साथ जाति, धर्म, लिंग, रंग के आधार पर बिना भेदभाव के समान व्यवहार की बात करता है। आर्थिक न्याय के द्वारा आर्थिक असमानता को दूर करने का प्रयास है राजनीतिक न्याय हर व्यक्ति को समान राजनीतिक अधिकार प्रदान करता है। संविधान निर्माताओं ने पूर्ण सुचिता और ईमानदारी के साथ विश्व के सबसे बड़े संविधान के माध्यम से स्थापित भारतीय लोकतंत्र ने विगत सात दशकों से अधिक समय की विकास यात्रा के द्वारा विश्व के समक्ष संसदीय लोकतंत्र का अप्रतिम आदर्श प्रस्तुत किया है। प्रत्येक नागरिक को संविधान-प्रदत्त राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक न्याय उपलब्ध है। स्वंतत्र, निष्पक्ष चुनाव के माध्यम से सरकारों का शांतिपूर्ण परिवर्तन संभव है। प्रत्येक वयस्क भारतीय लोकतंत्र में साझेदार है पर डार्विन के सिद्धांत सरवाइवल ऑफ द फिटेस्ट अर्थात् योग्यतम की उत्तरजीविता के कारण हमारे लोकतंत्र की जड़े कई कारणों से हिल रही है। देश में अक्सर क़ानून और व्यवस्था बेक़ाबू हुई। हिंसा उपद्रव ,लूट मार सामान्य सी बात हो गई है।

प्रस्तावना हर व्यक्ति के लिए मौलिक अधिकारों के माध्यम से अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता सुरक्षित करती है और यदि इनका हनन होता है तो हम क़ानून की शरण ले सकते है। प्रस्तावना के अंतर्गत क्षमता का भी उल्लेख है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना प्रत्येक नागरिक को स्थिति और अवसर की समानता प्रदान करती है। समानता के तीन आयाम है नागरिक, राजनीतिक और आर्थिक समानता और मौलिक अधिकार के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 और 18 नागरिक समता को सुनिश्चित करते हैं। संविधान में दो ऐसे उपबंध है जो राजनीतिक समानता को सुनिश्चित करते हैं। पहला अनुच्छेद 325 है जिसमें धर्म, जाति,

लिंग अथवा वर्ग के आधार पर किसी व्यक्ति को मतदाता सूची में शामिल होने के अयोग्य करार नहीं दिया जाएगा। दूसरा अनुच्छेद 326 जिसमें लोक सभा और विधान सभा के लिए वयस्क मतदान का प्रावधान है। राज्य के नीति निदेशक तत्व के अनुच्छेद 39 महिला तथा पुरुष को जीवन यापन के लिए पर्याप्त साधन और समान कार्य के लिए समान अधिकार के वेतन को सुरक्षित करता है।

न्याय, स्वतंत्रता और समानता का आदर्श तभी सार्थक हो सकता है जब वे बंधुत्व की भावना से ओतप्रोत हों। सर्वसामान्य नागरिकता से संबंधित उपबंधों का उद्देश्य भारतीय नागरिकों में बधुत्व की भावना को मज़बूत करना है। मौलिक अधिकार और निदेशक तत्व भी बंधुता को बढ़ावा देते है। संविधान के अंतर्गत जो मूल कर्त्तव्य निर्धारित किए गए हैं इसके अंर्तगत प्रत्येक नागरिक को यह भी कर्त्तव्य दिया गया है कि वे सभी धर्म, भाषा, क्षेत्र या वर्ग की विविधताओं को लांघकर भारत के सभी लोगों में भाईचारे की भावना को बढ़ावा दें। जैसाकि सुभाष कश्यप जी ने कहा है कि दुर्भाग्यवश न्यायविदों तथा न्यायाधीशों ने इस संकल्पना को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया है। बंधुता के इस भाव में विश्व बंधुत्व की संकल्पना भी निहित है जिसको संविधान के अनुच्छेद 51 में निदेशक सिद्धांतों के अंतर्गत रखा गया है। बंधुता से व्यक्ति की गरिमा को सुरक्षित रखने तथा बढ़ावा देने की आशा की जाती है। संविधान निर्माताओं के मन में व्यक्ति की गरिमा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था जिसके पीछे यही भाव था कि स्वतंत्रता, समानता आदि के मौलिक अधिकारों की गारंटी के द्वारा और नीति निर्देशक तत्वों के रूप में दिशा-निर्देश जारी करके सरकार अपनी नीतियों को इस प्रकार से क्रियान्वित करे कि सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन, समुचित जीवन स्तर, काम की न्याय संगत, मानवोचित दशाएँ और व्यक्ति के जीवन की गुणतत्ता में सुधार संभव हो सके। इस हेतु प्रयास भी किया गया है परंतु आज भी समाज के अंतर्गत ग़रीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी और व्यक्ति की गरिमा का वो सम्मान नहीं होता जो होना चाहिए विशेष रूप से समाज के अंतर्गत निर्बल वर्ग और महिलाओं की गरिमा के साथ कई बार खिलवाड़ किया जाता है।

लोकतंत्र के उतार चढ़ाव के परिप्रेक्ष्य में जहाँ न्यायिक सक्रियता से जनआंकाशाओं को पूर्ण करने का प्रयास किया गया वहीं जनहित याचिका द्वारा एक व्यक्ति अपनी पर्याप्त रुचि के बल पर अन्य व्यक्तियों के अधिकार दिलाने या आम शिकायत दूर करने के लिए न्यायालय जा सकता है। जो लोकतंत्र की भावना के अनुकूल है। जिसमें ग़रीब जनता तक न्याय को सुलभ बनाना उद्देश्य रहा है।

संविधान की प्रस्तावना में सम्मिलित विभिन्न संकल्पनाओं और शब्दों से पता चलता है कि इस प्रस्तावना के गरिमामय शब्द भारत के संविधान के दर्शन आदर्शों और उसकी आत्मा का निरूपण करते हैं। उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि प्रस्तावना में संविधान की कुछ ऐसी बुनियादी विशेषताएँ निहित है। जिन्हें अनुच्छेद 368 के अधीन संविधान के किसी संशोधन के द्वारा बदला नहीं जा सकता लेकिन प्रस्तावना में प्रयुक्त समाजवादी, पंथनिरपेक्ष शब्द बहुत

ही अस्पष्ट है और संविधान में उनकी सही-सही परिभाषा नहीं होने के कारण हमारी राज्य व्यवस्था को कई बार काफ़ी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा। संविधान पर अमल केवल संविधान के स्वरूप पर निर्भर नहीं करता। संविधान केवल विधायिका कार्यपालिका और न्यायपालिका जैसे राज्य के अंगों का प्रावधान कर सकता है। राज्य के उन अंगों का संचालन लोगों पर तथा उनके द्वारा अपनी आकांक्षाओं तथा अपनी राजनीति की पूर्ति के लिए बनाए जाने वाले राजनीतिक दलों पर निर्भर करता है। कौन कह सकता है कि भारत के लोगों तथा उनकी राजनीतिक दलों का व्यवहार कैसा होगा, जातियों तथा संप्रदायों के रूप में हमारे पुराने शत्रुओं के अलावा विभिन्न तथा परस्पर विरोधी विचारधारा रखने वाले राजनीतिक दल बन जाएँगे क्या भारतवासी देश को अपने पंथ से ऊपर रखेंगे या पंथ को देश से ऊपर रखेंगे मैं नहीं जानता। लेकिन यह बात निश्चित है कि यदि राजनीतिक दल अपने पंथ को देश से ऊपर रखेंगे तो हमारी स्वतंत्रता एक बार फिर ख़तरे में पड़ जाएगी और संभवत हमेशा के लिए खत्म हो जाए हम सभी को इस संभावित घटना का दृढ़ निश्चय के साथ प्रतिकार करना चाहिए। हमें अपनी आज़ादी की खून के आख़िरी कतरे के साथ रक्षा करने का संकल्प करना चाहिए। डॉ. राजेंद्र प्रसाद को 25 तथा 26 नवंबर, 1949 को भाषण करते हुए इन बातों को कहते हुए चेतावनी तथा सावधानी जैसे शब्दों का प्रयोग करना पड़ा था। प्रश्न उठता है हमारी प्रस्तावना की क्या मंशा थी और हमने उसकी मंशा के अनुरूप किस प्रकार से कार्य किया। क्या प्रस्तावना में संविधान की धारा 368 के तहत संशोधन किया जा सकता है यह भी विचारणीय प्रश्न है और यह प्रश्न पहली बार ऐतिहासिक वाद **केशवानंद भारती मामले** में उठा यह विचार सामने आया कि इसमें संशोधन नहीं किया जा सकता क्योंकि यह संविधान का भाग नहीं है। अनुच्छेद 368 के जरिए संविधान के मूल तत्व और मूल विशेषताएँ जो कि संविधान में उल्लिखित हैं को ध्वस्त करने वाला संशोधन नहीं किया जा सकता। यद्यपि उच्चतम न्यायालय ने व्यवस्था दी की प्रस्तावना संविधान का एक भाग है। न्यायालय ने यह मत **बेरुबारी संघ 1960 के मामले** के तहत दिया और कहा कि पूर्व में इस केस में संदर्भित निर्णय ग़लत था और प्रस्तावना में संशोधन कर सकते हैं लेकिन इसकी मूल विशेषताओं में संशोधन नहीं किया जाए। इस प्रकार न्यायालय ने यह व्यवस्था दी कि प्रस्तावना में निहित मूल विशेषताओं का अनुच्छेद 368 के तहत संशोधन नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार हमारे संविधान की प्रस्तावना उस आधारभूत दर्शन और राजनीतिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों का उल्लेख करती है जो हमारे संविधान का आधार है। संविधान सभा के अध्यक्ष अल्लादी कृष्ण स्वामी अय्यर के द्वारा भी कहा गया कि संविधान की प्रस्तावना हमारे दीर्घकालिक सपनों का विचार है। पंडित ठाकुरदास भार्गव ने प्रस्तावना के संबंध में कहा, संविधान की प्रस्तावना संविधान का सबसे सम्मानित भाग है। यह संविधान की आत्मा है यह संविधान का आभूषण है यह एक उचित स्थान है जहाँ से कोई भी संविधान का मूल्यांकन कर सकता है। भारत के पूर्व न्यायाधीश एम हिदायतुल्लाह मानते हैं कि प्रस्तावना अमेरिका की स्वतंत्रता

की घोषणा के समान है लेकिन यह इस घोषणा से भी ज़्यादा है, यह हमारे संविधान की आत्मा है, जिसमें हमारे राजनीतिक समाज की तौर-तरीकों को दर्शाया गया है, इसमें गंभीर संकल्प शामिल है, जिन्हें एक क्रांति ही परिवर्तित कर सकती है। संविधान की प्रस्तावना की जो मनसा रही उसके अनुरूप संविधान की विभिन्न भागों में दिए गए उपबंध चाहे वह न्यायपालिका से संबंधित हो, संसद से संबंधित हो, उन सभी में यही अपेक्षा की गई है कि हम प्रस्तावना में दिए गए आदेशों के अनुरूप अपना जीवन यापन करें और प्रत्येक सरकार अपने नागरिकों को एक अच्छा जीवन, स्वतंत्रता, समानता प्रदान करें। रघुकुल तिलक ने एक बात बहुत पहले कही थी कि ''भारत की जनता अपने स्वभाव और मनोवृति के कारण लोकतंत्र को सफल बनाने की क्षमता नहीं रखती। यहाँ की धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ लोगों को भाग्यवादी और सहनशील होना सिखाती हैं और इसीलिए वे निरंकुश शासन के अत्याचार को सहज सहन कर लेते है और सत्ताधारियों का विरोध या आलोचना पसंद नहीं करती। इसके अतिरिक्त यहाँ का समाज, जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र के आधार पर इतने छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा है कि कोई भी निरंकुश तंत्र इस फूट से लाभ उठा कर सहज ही अपना आधिपत्य जमा सकता है। ऐसा समाज उदारवादी प्रतिनिधि लोकतंत्र के लिए जो क्षमता और सामाजिक न्याय की नींव पर खड़ा हो अनुकूल पर्यावरण प्रस्तुत नहीं करता।'' देखा जाए तो समाज में उत्पादन के साधन स्रोत पर गिनती के लोगों का एकाधिकार है। श्रम के मूल्य की अवमानना हो रही है। शिष्टता और सभ्यता रूढ़ियों से ग्रस्त होकर सिसक रही है तो इसे हम कैसे लोकतांत्रिक समाज में प्रस्तावना की मंशा के अनुकूल स्वीकार करें? कहने का तात्पर्य है कि हमारे संविधान की प्रस्तावना की मंशा अत्यंत महत्त्वपूर्ण है पर जिस रूप से क्रियान्वयन होना चाहिए होता दिखाई नहीं दिखता। न्यायिक सक्रियता तभी बड़ी जब कार्यपालिका और व्यवस्थापिका ने अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन पूरे मन से नहीं किया। शायद इसीलिए संविधान सभा के अध्यक्ष राजेंद्र प्रसाद ने कहा, ''मैं महसूस करता हूँ कि संविधान चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो यदि वह लोग जिन्हें संविधान को अमल में लाने का काम सौंपा जाए, ख़राब निकले तो निश्चित रूप से संविधान भी ख़राब सिद्ध होगा, दूसरी ओर संविधान चाहे कितना भी ख़राब क्यों ना हो यदि वे लोग जिन्हें संविधान को अमल में लाने का काम सौंपा जाए अच्छे हो तो संविधान अच्छा सिद्ध होगा।''

अतः संविधान का जो संकल्प, आदर्श व उद्देश्य है उनके अनुरूप कार्य करते हुए निश्चित रूप से हमने और हमारे राष्ट्र ने निरंतर प्रगति की है। परंतु फिर भी समाज में विषमता देखने को मिल रही है इसलिए नागरिकों का संकल्प होना चाहिए कि वे शासन करने के लिए योग्य जनप्रतिनिधियों का चुनाव करें और सरकार में कार्यरत् जनप्रतिनिधियों का ये दायित्व है कि वे जन आंकाशाओं के अनुरूप कार्य करें तभी हम डॉ. राजेंद्र प्रसाद के कथन को साकार करेंगे कि अच्छे लोगों के हाथ में संविधान था और उन्होंने उसके क्रियान्वयन में ज़िम्मेदारी का निर्वहन किया।

❑

संदर्भ

- कश्यप सुभाष, हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2012
- कश्यप सुभाष, हमारी संसद, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली, 2013
- कोठारी रजनी, भारत में राजनीति, ओरिएंट लॉगमैन।
- शर्मा बोरा नीता, संसदीय लोकतंत्र के महत्त्वपूर्ण स्तंभ एवं चुनौतियाँ, आचार्य नरेंद्र देव शोध संस्थान, 2007।
- Sharma Bora Neeta, Human Rights and Challenges of Women in India, Anamika Publishers, 2019
- एम. लक्ष्मीकांत, भारत की राजव्यवस्था, एमसीग्रो हिल ऐजुकेशन प्राईवेट लिमिटेड, 2020
- कश्यप सुभाष, रिफॉर्मिंग द कांस्टिट्यूशन, नई दिल्ली, 1992

लघु कथा

मनमोहन कालरा

फलों के टोकरे

यह घटना अक्टूबर 1962 की है, जब मैं पहली बार छोटे शहर भुसावल से महानगरी बॉम्बे नौकरी के सिलसिले में जा रहा था। गाड़ी में मेरी पहचान मियाँ अहसान अली नाम के पठान से हुई। उनके पास सामान के अलावा तीन फलों के टोकरे थे। उन्होंने मुझे एक संतरा देते हुए कहा -- 'मियाँ इन्हें सीधे बागों से पैक करवाकर ला रहा हूँ। खाइए न दाने-दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम'। संतरा बहुत मीठा था। जब मैंने बहुत तारीफ की तो उन्होंने बड़े स्नेहपूर्वक आग्रह कर मुझे एक और संतरा खिलाया। उनकी बातें और उनका व्यवहार मुझे काफ़ी प्रभावित कर रहा था। वैसे मैं किसी अनजान से परिचय कभी नहीं बढ़ाता और उनके हाथ से कुछ लेकर खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। पर पता नहीं उसमें क्या कशिश थी मैं हिप्नोटाइस हो गया था। बॉम्बे स्टेशन आने से पहले उन्होंने मुझसे थोड़ी मदद माँगी कि आप के पास एक ही छोटी अटैची है और मेरे पास सामान और फलों के तीन टोकरे हैं। इन सबका वज़न अधिकृत सीमा से अधिक है। इसलिए मेरे संतरों के टोकरे आप बाहर निकलवा देना। उन दिनों टिकिट पर सामान ले जाने की सीमा थी। जैसे हवाई जहाज में होती है। मैंने उनके तीन संतरों के टोकरे अपनी टिकट पर बाहर निकलवा दिए, और मैं अपने गंतव्य की ओर चल पड़ा। दूसरे दिन सुबह जब अखबार पढ़ा तो मेरे होश उड़ गए। समाचार था कि बंबई पुलिस की अपराध शाखा ने अहसान अली नाम के व्यक्ति को स्टेशन के बाहर निकलते ही हिरासत में ले लिया था। उसके पास से तीन संतरों के टोकरे बरामद हुए थे जिसके नीचे ड्रग्स, अफ़ीम, गांजा आदि नशीले पदार्थ थे। वह एक तस्कर था। समाचार पढ़कर मैं सिहर उठा, पसीने से लथपथ हो उठा कि यदि मैं पकड़ा जाता, तो क्या होता? सीधे जेल जाना पड़ता। अपने को बचाना मुश्किल हो जाता।

ख्याली राम पांडे

अपनी संसद को जाने

यह जान कर खुशी हुई कि संसद भवन की इमारत बहुत पुरानी हो जाने के कारण नई इमारत का शिलान्यास माननीय प्रधानमंत्री जी 10 दिसंबर को भूमि पूजन के साथ करने जा रहे हैं। इस संसद भवन की इमारत का इतिहास बहुत पुराना है। यह हमारे देश की भव्यतम इमारतों में से एक है। इस इमारत का डिजाइन एडविन लुटीयन और हर्बर्ट बेकर ने तैयार किया था। इसीलिए इसके आसपास के इलाके को लुटीयन जोन के नाम से जाना जाता है। इस भव्य इमारत का शिलान्यास 12 फरवरी, 1921 को ड्यूक ऑफ कनॉट द्वारा किया गया जो 6 साल से भी कम समय में बन कर तैयार हुई तथा इसका उद्घाटन तत्कालीन गवर्नर गनरल लॉर्ड इरविन ने 19 जनवरी, 1927 को किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उच्चतम न्यायालय भी इसी इमारत में थी। इस इमारत में जहाँ लोक सभा तथा राज्य सभा के दो बड़े-बड़े सभागार हैं, वहीं इसके मध्य ऐतिहासिक सभागार (सेंट्रल हॉल) है, जिसमें 14-15 अगस्त, 1947 की मध्य रात्री को सत्ता हस्तांतरण हुआ था। डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में 9 दिसंबर, 1946 से 26 नवंबर, 1949 तक भारतीय संविधान सभा की बैठकें भी इसी हाल में होती थीं। अब राष्ट्रपति महोदय का अभिभाषण साल में एक बार, बजट सत्रा से पहले इसी हाल में होता है तथा संसद की संयुक्त बैठकें एवं विदेशी शासनाध्यक्ष एवं राष्ट्राध्यक्ष, भारतीय सांसदों को इसी हाल में संबोधित करते हैं।

समय के साथ-साथ आवश्यकताएँ बढ़ीं और अन्य मंत्रालयों की तरह लोक सभा तथा राज्य सभा सचिवालय का भी विस्तार होने लगा। संसद भवन छोटा पड़ने लगा तो 3 अगस्त, 1970 को तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री गुरुदयाल सिंह ढिल्लों एवं राष्ट्रपति श्री वी.वी. गिरि ने संसद भवन एनेक्सी नाम से दूसरी बिल्डिंग की आधारशिला रखी। इसे संसदीय सौध नाम से भी जाना जाता है। लगभग पाँच वर्षों में यह इमारत बन कर तैयार हो गई तथा 24 अक्तूवर, 1975 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा इसका विधिवत् उद्घाटन किया गया।

संसद भवन तथा संसद भवन एनेक्सी के अलावा एक और इमारत संसदीय ज्ञानपीठ (संसद ग्रंथालय भवन) भी है। इसका शिलान्यास 15 अगस्त, 1987 को तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी तथा निर्माण कार्य 17 अप्रैल, 1994 को तत्कालीन लोक सभा अध्यक्ष श्री शिवराज पाटील के भूमि पूजन के साथ शुरू हुआ। 7 मई, 2002 को तत्कालीन राष्ट्रपति श्री

के.आर. नारायणन ने इसका उदघाटन किया। इस इमारत के अंदर विशाल संसदीय पुस्तकालय है। इसे संसद ग्रंथालय तथा संदर्भ, अनुसंधान, प्रलेखन और सूचना सेवा कहा जाता है। इसका पहला उद्देश्य संसद सदस्यों को देश-विदेश के दैनिक घटनाक्रम की पूरी जनकारी उपलब्ध कराना है। इस समय इस पुस्तकालय में 15 लाख से अधिक पुस्तकें हैं। अंग्रेज़ी तथा भारतीय भाषाओं के लगभग 300 भारतीय तथा विदेशी समाचार-पत्र यहाँ आते हैं। 1100 के क़रीब पत्र-पत्रिकाओं, कला पुस्तकों आदि का विशाल संग्रह है। सबसे पुरानी छपी हुई पुस्तक 1871 की है। किंतु, पुस्तकालय की सर्वाधिक मूल्यवान धरोहर संविधान सभा द्वारा यथा स्वीकृत तथा इसके सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित भारत के संविधान की हिंदी तथा अंग्रेज़ी में मूल सुलिखित प्रति है। 1987 में यहाँ कंप्यूटर केंद्र की स्थापना की गई। संसदीय ग्रंथालय सूचना प्रणाली नेशनल इन्फार्मेशन सेंटर नेटवर्क से जुड़ी हुई है। इस प्रणाली द्वारा समूचे देश में ज़िला सूचना केंद्रों के साथ सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जा सकता है। इस ग्रंथालय में शोधार्थ विद्यार्थी भी अध्ययन के लिए आते हैं। ❑

लघु कथा

मनमोहन कालरा

आस्था

बात उन दिनों की है, जब 31 अक्टूबर, 1984 में इंदिरा गांधी की नृशंस हत्या के बाद दिल्ली सहित भारत के अन्य शहरों में दंगे भड़क उठे थे। मेरा एक सिख सहकर्मी अपने परिवार के साथ दिल्ली के यमुना विहार इलाके में रहता था। 1 नवंबर, 1984 को दंगाई हथियारों से लैस दिन में क़रीब 11 बजे यमुना विहार पहुँचे। उनके पास वोटर सूची थी। वे सरदार जी के घर पहुँचे। घर के बाहर बड़ा ताला लटक रहा था, जो कि पड़ोसियों ने सरदार जी की सुरक्षा के लिए लगा दिया था। सरदार जी दुर्गा माँ के भी भक्त थे। उन्होंने अपनी कोठी के माथे पर माँ दुर्गा की प्रतिमा लगाई हुई थी। दंगाइयों ने पड़ोसियों से पूछा कि 'सरदार जी कहाँ है?' पड़ोसियों ने बताया कि सरदार जी सेवा-निवृत्त होने के बाद बहुत पहले ही पंजाब चले गए थे। अब यह मकान किस ने ख़रीदा है। नए मालिक अभी यहाँ नहीं आए। हाँ, इसलिए मकान पर ताला लगा हुआ है। दंगाइयों को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने पड़ोसियों से कहा कि आप झूठ बोल रहे हैं। पड़ोसियों ने दंगाइयों को बताया कि देखिए कोठी के बाहर ऊपर माथे पर दुर्गा माँ की प्रतिमा लगी है, यह मकान किसी सिख का कैसे हो सकता है? यह तो हिंदू का ही मकान है। दंगाई आश्वस्त होकर चुपचाप चले गए। सरदार जी और उनके परिवार की रक्षा माँ दुर्गा ने की।

कहानी

मुंशी प्रेमचंद

दिल की रानी

जिन वीर तुर्कों के प्रखर प्रताप से ईसाई दुनिया काँप रही थी, उन्हीं का रक्त आज कुस्तुनतुनिया की गलियों में बह रहा है। वही कुस्तुनतुनिया जो सौ साल पहले तुर्कों के आतंक से आहत हो रहा था, आज उनके गर्म रक्त से अपना कलेजा ठंडा कर रहा है और तुर्की सेनापति एक लाख सिपाहियों के साथ तैमूरी तेज़ के सामने अपनी किस्मत का फ़ैसला सुनने के लिए खड़ा है।

तैमूर ने विजय से भरी आँखें उठाई और सेनापति यजदानी की ओर देख कर सिंह के समान गरजा -- 'क्या चाहते हो ज़िंदगी या मौत' यजदानी ने गर्व से सिर उठाकार कहा -- इज़्जत की ज़िंदगी मिले तो ज़िंदगी, वरना मौत।

तैमूर का क्रोध प्रचंड हो उठा। उसने बड़े-बड़े अभिमानियों का सिर नीचा कर दिया था। यह जबाब इस अवसर पर सुनने की उसे ताव न थी। इन एक लाख आदमियों की जान उसकी मुठ्ठी में है। इन्हें वह एक क्षण में मसल सकता है। उस पर इतना अभिमान। इज़्जत की ज़िंदगी। इसका यही तो अर्थ हैं कि ग़रीबों का जीवन अमीरों के भोग-विलास पर बलिदान किया जाए। वही शराब की मजलिसें, वही अरमीनिया और काफ की परिया। नहीं, तैमूर ने ख़लीफ़ा बायजीद का घमंड इसलिए नहीं तोड़ा है कि तुर्कों को फिर उसी मदांध स्वाधीनता में इस्लाम का नाम डुबाने को छोड़ दे। तब उसे इतना रक्त बहाने की क्या ज़रूरत थी? मानव-रक्त का प्रवाह संगीत का प्रवाह नहीं, रस का प्रवाह नहीं-एक वीभत्स दृश्य है, जिसे देखकर आँखें मुह फेर लेती हैं दृश्य सिर झुका देता है। तैमूर हिंसक पशु नहीं है, जो यह दृश्य देखने के लिए अपने जीवन की बाजी लगा दे।

वह अपने शब्दों में धिक्कार भरकर बोला -- ''जिसे तुम इज़्जत की ज़िंदगी कहते हो, वह गुनाह और जहन्नुम की ज़िंदगी है।''

यजदानी को तैमूर से दया या क्षमा की आशा न थी। उसकी या उसके योद्वाओं की जान किसी तरह नहीं बच सकती। फिर वह क्यों दबें और क्यों न जान पर खेलकर तैमूर के प्रति उसके मन में जो घृणा है, उसे प्रकट कर दें? उसके एक बार कातर नेत्रों से उस रूपवान युवक की ओर देखा, जो उसके पीछे खड़ा, जैसे अपनी जवानी की लगाम खींच रहा था। सान पर चढ़े हुए, इस्पात के समान उसके अंग-अंग से अतुल क्रोध की चिंगारियाँ निकल रही थीं।

यजदानी ने उसकी सूरत देखी और जैसे अपनी खींची हुई तलवार म्यान में कर ली और ख़ून का घूँट पीकर बोला -- जहाँपनाह इस वक़्त फतेहमंद हैं लेकिन अपराध क्षमा हो तो कह दूँ कि अपने जीवन के विषय में तुर्कों को तातरियों से उपदेश लेने की ज़रूरत नहीं। पर जहाँ ख़ुदा ने नेमतों की वर्षा की हो, वहाँ उन नेमतों का भोग न करना नाशुक्री है। अगर तलवार ही सभ्यता की सनद होती, तो गाल कौम रोमनों से कहीं ज़्यादा सभ्य होती।

तैमूर ज़ोर से हँसा और उसके सिपाहियों ने तलवारों पर हाथ रख लिए। तैमूर का ठहाका मौत का ठहाका था या गिरने वाला वज्र का तड़ाका।

तातार वाले पशु हैं क्यों?

मैं यह नहीं कहता।

तुम कहते हो, ख़ुदा ने तुम्हें ऐश करने के लिए पैदा किया है। मैं कहता हूँ, यह कुफ्र है। ख़ुदा ने इन्सान को बंदगी के लिए पैदा किया है और इसके ख़िलाफ़ जो कोई कुछ करता है, वह क़ाफ़िर है, जहन्नुमी रसूलेपाक हमारी ज़िंदगी को पाक करने के लिए, हमें सच्चा इन्सान बनाने के लिए आए थे, हमें हरा की तालीम देने नहीं। तैमूर दुनिया को इस कुफ्र से पाक कर देने का बीड़ा उठा चुका है। रसूलेपाक के क़दमों की क़सम, मैं बेरहम नहीं हूँ ज़ालिम नहीं हूँ, ख़ूँखार नहीं हूँ, लेकिन कुफ्र की सज़ा मेरे ईमान में मौत के सिवा कुछ नहीं है।

उसने तातारी सिपहसालार की तरफ़ कातिल नज़रों से देखा और तत्क्षण एक देव-सा आदमी तलवार सौतकर यजदानी के सिर पर आ पहुँचा। तातारी सेना भी तलवारें खींच-खींच कर तुर्की सेना पर टूट पड़ी और दम-के-दम में कितनी ही लाशें ज़मीन पर फड़कने लगीं।

सहसा वही रूपवान् युवक, जो यजदानी के पीछे खड़ा था, आगे बढ़ कर तैमूर के सामने आया और जैसे मौत को अपनी दोनों बँधी हुई मुट्ठियों में मसलता हुआ बोला -- "ऐ अपने को मुसलमान कहने वाले बादशाह। क्या यही वह इस्लाम की यही तालीम है कि तू उन बहादुरों का इस बेदर्दी से ख़ून बहाए, जिन्होंने इसके सिवा कोई गुनाह नहीं किया कि अपने ख़लीफ़ा और मुल्कों की हिमायत की?"

चारों तरफ़ सन्नाटा छा गया। एक युवक, जिसकी अभी मसें भी न भीगी थी; तैमूर जैसे तेज़स्वी बादशाह का इतने खुले हुए शब्दों में तिरस्कार करें और उसकी जबान तालू से खिंचवा ली जाए। सभी स्तंभित हो रहे थे और तैमूर सम्मोहित-सा बैठा, उस युवक की ओर ताक रहा था।

युवक ने तातारी सिपाहियों की तरफ़, जिनके चेहरों पर कौतूहलमय प्रोत्साहन झलक रहा था, देखा और बोला -- तू इन मुसलमानों को क़ाफ़िर कहता है और समझता है कि तू इन्हें क़त्ल करके ख़ुदा और इस्लाम की ख़िदमत कर रहा है? मैं तुमसे पूछता हूँ, अगर वह लोग जो ख़ुदा के सिवा और किसी के सामने सिजदा नहीं करते, जो रसूलेपाक को अपना रहबर समझते हैं, मुसलमान नहीं है तो कौन मुसलमान हैं? मैं कहता हूँ, हम क़ाफ़िर सही लेकिन तेरे तो हैं क्या इस्लाम जंजीरों में बँधे हुए क़ैदियों के क़त्ल की इजाज़त देता है ख़ुदा ने अगर

तुझे ताक़त दी है, अख़्तियार दिया है तो क्या इसीलिए कि तू ख़ुदा के बंदों का ख़ून बहाए? क्या गुनाहगारों को क़त्ल करके तू उन्हें सीधे रास्ते पर ले जाएगा? तूने कितनी बेहरमी से सत्तर हज़ार बहादुर तुर्कों को धोखा देकर सुरंग से उड़वा दिया और उनके मासूम बच्चों और निरपराध स्त्रियों को अनाथ कर दिया, तुझे कुछ अनुमान है? क्या यही कारनामे हैं, जिन पर तू अपने मुसलमान होने का गर्व करता है। क्या इसी क़त्ल, ख़ून और बहते दरिया में अपने घोड़ों के सुम नहीं भिगोए हैं, बल्कि इस्लाम को जड़ से खोद कर फेंक दिया है। यह वीर तुर्कों का ही आत्मोत्सर्ग है, जिसने यूरोप में इस्लाम की तौहीद फैलाई। आज सोपिया के गिरजे में तुझे अल्लाह-अकबर की सदा सुनाई दे रही है, सारा यूरोप इस्लाम का स्वागत करने को तैयार है। क्या यह कारनामे इसी लायक हैं कि उनका यह इनाम मिले। इस ख़्याल को दिल से निकाल दे कि तू ख़ूरेजी से इस्लाम की ख़िदमत कर रहा है। एक दिन तुझे भी परवरदिगार के सामने कर्मों का जवाब देना पड़ेगा और तेरा कोई उज्र न सुना जाएगा, क्योंकि अगर तुझमें अब भी नेक और बद की क़मीज़ बाक़ी है, तो अपने दिल से पूछ। तूने यह जिहाद ख़ुदा की राह में किया या अपनी हवस के लिए और मैं जानता हूँ, तुझे जो जवाब मिलेगा, वह तेरी गर्दन शर्म से झुका देगा।

ख़लीफ़ा अभी सिर झुकाए ही था कि यजदानी ने काँपते हुए शब्दों में अर्ज़ की -- ''जहाँपनाह, यह ग़ुलाम का लड़का है। इसके दिमाग़ में कुछ फ़ितूर है। हुज़ूर इसकी गुस्ताख़ियों को मुआफ़ करें। मैं उसकी सज़ा झेलने को तैयार हूँ।''

तैमूर उस युवक के चेहरे की तरफ़ स्थिर नेत्रों से देख रहा था। आज जीवन में पहली बार उसे निर्भीक शब्दों के सुनने का अवसर मिला। उसके सामने बड़े-बड़े सेनापतियों, मंत्रियों और बादशाहों की जबान न खुलती थी। वह जो कुछ कहता था, वही क़ानून था, किसी को उसमें चूँ करने की ताक़त न थी। उसका ख़ुशामदों ने उसकी अहम्मन्यता को आसमान पर चढ़ा दिया था। उसे विश्वास हो गया था कि ख़ुदा ने इस्लाम को जगाने और सुधारने के लिए ही उसे दुनिया में भेजा है। उसने पैगंबरी का दावा तो नहीं किया, पर उसके मन में यह भावना दृढ़ हो गई थी, इसलिए जब आज एक युवक ने प्राणों का मोह छोड़कर उसकी कीर्ति का पर्दा खोल दिया, तो उसकी चेतना जैसे जाग उठी। उसके मन में क्रोध और हिंसा की जगह श्रद्धा का उदय हुआ। उसकी आँखों का एक इशारा इस युवक की ज़िंदगी का चिराग गुल कर सकता था। उसकी संसार विजयिनी शक्ति के सामने यह दुधमुहा बालक मानो अपने नन्हे-नन्हे हाथों से समुद्र के प्रवाह को रोकने के लिए खड़ा हो। कितना हास्यास्पद साहस था उसके साथ ही कितना आत्मविश्वास से भरा हुआ। तैमूर को ऐसा जान पड़ा कि इस निहत्थे बालक के सामने वह कितना निर्बल है। मनुष्य में ऐसे साहस का एक ही स्रोत हो सकता है और वह सत्य पर अटल विश्वास है। उसकी आत्मा दौड़कर उस युवक के दामन में चिपट जाने के लिए अधीर हो गई। वह दार्शनिक न था, जो सत्य में शंका करता है; वह सरल सैनिक था, जो असत्य को भी विश्वास के साथ सत्य बना देता है।

यजदानी ने उसी स्वर में कहा -- जहाँपनाह, इसकी बदजबानी का ख़्याल न फरमाएँ।

तैमूर ने तुरंत तख़्त से उठकर यजदानी को गले से लगा लिया और बोला -- काश, ऐसी गुस्ताख़ियों और बदजबानियों के सुनने का पहने इत्तेफ़ाक़ होता, तो आज इतने बेगुनाहों का ख़ून मेरी गर्दन पर न होता। मुझे इस जबान में किसी फरिश्ते की रूह का जलवा नज़र आता है, जो मुझ जैसे गुमराहों को सच्चा रास्ता दिख़ाने के लिए भेजी गई है। मेरे दोस्त, तुम ख़ुशनसीब हो कि ऐस फरिश्ता सिफ़त बेटे के बाप हो। क्या मैं उसका नाम पूछ सकता हूँ।

यजदानी पहले आतशपरस्त था, पीछे मुसलमान हो गया था, पर अभी तक कभी-कभी उसके मन में शंकाएँ उठती रहती थीं कि उसने क्यों इस्लाम क़बूल किया। जो क़ैदी फाँसी के तख़्ते पर खड़ा सूखा जा रहा था कि एक क्षण में रस्सी उसकी गर्दन में पड़ेगी और वह लटकता रह जाएगा, उसे जैसे किसी फरिश्ते ने गोद में ले लिया। वह गद्‌गद्‌ कंठ से बोला -- उसे हबीबी कहते हैं।

तैमूर ने युवक के सामने जाकर उसका हाथ पकड़ लिया और उसे आँखों से लगाता हुआ बोला -- ''मेरे जवान दोस्त, तुम सचमुच ख़ुदा के हबीब हो, मैं वह गुनाहगार हूँ, जिसने अपनी ज़हालत में हमेशा अपने गुनाहों को सवाब समझा, इसलिए कि मुझसे कहा जाता था, तेरी जात बे-ऐब है। आज मुझे यह मालूम हुआ कि मेरे हाथों इस्लाम को कितना नुक़सान पहुँचा। आज से मैं तुम्हारा ही दामन पकड़ता हूँ। तुम्हीं मेरे ख़िज्र, तुम्हीं मेरे रहनुमा हो। मुझे यक़ीन हो गया कि तुम्हारे ही वसीले से मैं ख़ुदा की दरगाह तक पहुँच सकता हूँ।''

यह कहते हुए उसने युवक के चेहरे पर नज़र डाली, तो उस पर शर्म की लाली छायी हुई थी। उस कठोरता की जगह मधुर संकोच झलक रहा था।

युवक ने सिर झुकाकर कहाँ -- ''यह हुजूर की क़दरदानी है, वरना मेरी क्या हस्ती है?

तैमूर ने उसे खींच कर अपनी बगल के तख़्त पर बिठा दिया और अपने सेनापति को हुक़्म दिया, सारे तुर्क क़ैदी छोड़ दिए जाएँ; उनके हथियार वापस कर दिए जाएँ और जो माल लूटा गया है, वह सिपाहियों में बराबर बाँट दिया जाए।

वज़ीर तो इधर इस हुक्म की तामील करने लगा, उधर तैमूर हबीब का हाथ पकड़े हुए अपने ख़ीमें में गया और दोनों मेहमानों की दावत का प्रबंध करने लगा। और जब भोजन समाप्त हो गया, तो उसने अपने जीवन की सारी कथा रो-रोकर कह सुनाई, जो आदि से अंत तक मिश्रित पशुता और बर्बरता के कृत्यों से भरी हुई थी। और उसने यह सब कुछ इस भ्रम में किया कि वह ईश्वरीय आदेश का पालन कर रहा है। वह ख़ुदा को कौन मुँह दिखाएगा। रोते-रोते हिचकिया बँध गई।

अंत में उसने हबीब से कहा -- ''मेरे जवान दोस्त अब मेरा बेड़ा आप ही पार लगा सकते हैं। आपने राह दिखाई है तो मंज़िल पर पहुँचाइए। मेरी बादशाहत को अब आप ही संभाल सकते हैं। मुझे अब मालूम हो गया कि मैं उसे तबाही के रास्ते पर लिए जाता था। मेरी आपसे यही इल्तमास (प्रार्थना) है कि आप उसकी वज़ारत कबूल करें। देखिए, ख़ुदा के

लिए इनकार न कीजिएगा, वरना मैं कहीं का नहीं रहूँगा।''

यजदानी ने अरज की -- हुजूर इतनी क़दरदानी फरमाते हैं, तो आपकी इनायत है, लेकिन अभी इस लड़के की उम्र ही क्या है। वज़ारत की ख़िदमत यह क्या अंजाम दे सकेगा। अभी तो इसकी तालीम के दिन है।

इधर से इनकार होता रहा और उधर तैमूर आग्रह करता रहा। यजदानी इनकार तो कर रहे थे, पर छाती फूली जाती थी। मूसा आग लेने गए थे, पैगम्बरी मिल गई। कहाँ मौत के मुँह में जा रहे थे, वज़ारत मिल गई, लेकिन यह शंका भी थी कि ऐसे अस्थिर चित्त का क्या ठिकाना आज ख़ुश हुए, वज़ारत देने को तैयार है, कल नाराज़ हो गए तो जान की ख़ैरियत नहीं। उन्हें हबीब की लियाक़त पर भरोसा था, फिर भी जी डरता था कि वीराने देश में न जाने कैसी पड़े, कैसी न पड़े। दरबार वालों में षड्यंत्र होते ही रहते हैं। हबीब नेक है, समझदार है, अवसर पहचानता है; लेकिन वह तजरबा कहाँ से लाएगा, जो उम्र ही से आता है।

उन्होंने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए एक दिन की मुहलत माँगी और रुख़सत हुए।

2

हबीब यजदानी का लड़का नहीं लड़की थी। उसका नाम उम्मतुल हबीब था। जिस वक़्त यजदानी और उसकी पत्नी मुसलमान हुए, तो लड़की की उम्र कुल बारह साल की थी, पर प्रकृति ने उसे बुद्धि और प्रतिभा के साथ विचार-स्वातंत्र्य भी प्रदान किया था। वह जब तक सत्यासत्य की परीक्षा न कर लेती, कोई बात स्वीकार न करती। माँ-बाप के धर्म-परिवर्तन से उसे अशांति तो हुई, पर तब तक इस्लाम की दीक्षा न ले सकती थी। माँ-बाप भी उस पर किसी तरह का दबाव न डालना चाहते थे। जैसे उन्हें अपने धर्म को बदल देने का अधिकार है, वैसे ही उसे अपने धर्म पर आरूढ़ रहने का भी अधिकार है। लड़की को संतोष हुआ, लेकिन उसने इस्लाम और जरथुश्त धर्म-दोनों ही का तुलनात्मक अध्ययन आरंभ किया और पूरे दो साल के अन्वेषण और परीक्षण के बाद उसने भी इस्लाम की दीक्षा ले ली। माता-पिता फूले न समाए। लड़की उनके दबाव से मुसलमान नहीं हुई है, बल्कि स्वेच्छा से, स्वाध्याय से और ईमान से। दो साल तक उन्हें जो शंका घेरे रहती थी, वह मिट गई।

यजदानी के कोई पुत्र न था और उस युग में जब कि आदमी की तलवार ही सबसे बड़ी अदालत थी, पुत्र का न रहना संसार का सबसे बड़ा दुर्भाग्य था। यजदानी बेटे का अरमान बेटी से पूरा करने लगा। लड़कों ही की भाँति उसकी शिक्षा-दीक्षा होने लगी। वह बालकों के से कपड़े पहनती, घोड़े पर सवार होती, शस्त्र-विद्या सीखती और अपने बाप के साथ अक्सर ख़लीफ़ा बायजीद के महलों में जाती और राजकुमारी के साथ शिकार खेलने जाती। इसके साथ ही वह दर्शन, काव्य, विज्ञान और अध्यात्म का भी अभ्यास करती थी। यहाँ तक कि सोलहवें वर्ष में वह फ़ौजी विद्यालय में दाख़िल हो गई और दो साल के अंदर वहाँ की सबसे ऊँची परीक्षा पास करके फ़ौज में नौकर हो गई। शस्त्र-विद्या और सेना-संचालन कला में इतनी निपुण

थी और ख़लीफ़ा बायजीद उसके चरित्र से इतना प्रसन्न था कि पहले ही पहल उसे एक हज़ारी मन्सब मिल गया।

ऐसी युवती के चाहने वालों की क्या कमी? उसके साथ के कितने ही अफसर, राज परिवार के कितने ही युवक उस पर प्राण देते थे, पर कोई उसकी नज़रों में न जँचता था। नित्य ही निकाह के पैगाम आते थे, पर वह हमेशा इनकार कर देती थी। वैवाहिक जीवन ही से उसे अरुचि थी कि युवतियाँ कितने अरमानों से ब्याह कर लाई जाती हैं और फिर कितने निरादर से महलों में बंद कर दी जाती हैं। उनका भाग्य पुरुषों की दया के अधीन है।

अक्सर ऊँचे घरानों की महिलाओं से उसको मिलने-जुलने का अवसर मिलता था। उनके मुख से उनकी करुण कथा सुनकर वह वैवाहिक पराधीनता से और भी घृणा करने लगती थी। और यजदानी उसकी स्वाधीनता में बिल्कुल बाधा न देता था। लड़की स्वाधीन है, उसकी इच्छा हो, विवाह करे या क्वारी रहे, वह अपनी-आप मुख़तार है। उसके पास पैगाम आते, तो वह साफ़ जवाब दे देता -- मैं इस बारे में कुछ नहीं जानता, इसका फ़ैसला वही करेगी।

यद्यपि एक युवती का पुरुष वेश में रहना, युवकों से मिलना-जुलना, समाज में आलोचना का विषय था, पर यजदानी और उसकी स्त्री दोनों ही को उसके सतीत्व पर विश्वास था। हबीब के व्यवहार और आचार में उन्हें कोई ऐसी बात नज़र न आती थी, जिससे उन्हें किसी तरह की शंका होती। यौवन की आँधी और लालसाओं के तूफ़ान में वह चौबीस वर्षों की वीरबाला अपने हृदय की संपत्ति लिए अटल और अजेय खड़ी थी, मानो सभी युवक उसके सगे भाई हैं।

3

कुस्तुनतुनिया में कितनी खुशियाँ मनाई गई, हवीब का कितना सम्मान और स्वागत हुआ, उसे कितनी बधाईयाँ मिली, यह सब लिखने की बात नहीं शहर तबाह हुआ जाता था। संभव था आज उसके महलों और बाज़ारों से आग की लपटें निकलती होतीं। राज्य और नगर को उस कल्पनातीत विपत्ति से बचाने वाला आदमी कितने आदर, प्रेम, श्रद्धा और उल्लास का पात्र होगा, इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उस पर कितने फूलों और कितने लाल-जवाहरों की वर्षा हुई इसका अनुमान तो कोई कवि ही कर सकता है और नगर की महिलाएँ हृदय के अक्षय भंडार से असीसें निकाल-निकाल कर उस पर लुटाती थी और गर्व से फूली हुई उसका मुँह निहार कर अपने को धन्य मानती थीं। उसने देवियों का मस्तक ऊँचा कर दिया।

रात को तैमूर के प्रस्ताव पर विचार होने लगा। सामने गद्देदार कुर्सी पर यजदानी था -- सौभ्य, विशाल और तेज़स्वी। उसकी दाहिनी तरफ़ पत्नी थी, ईरानी लिबास में, आँखों में दया और विश्वास की ज्योति भरे हुए। बायीं तरफ़ उम्मुतुल हबीब थी, जो इस समय रमणी-वेश में मोहिनी बनी हुई थी, ब्रह्मचर्य के तेज़ से दीप्त।

यजदानी ने प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा -- मैं अपनी तरफ़ से कुछ नहीं कहना चाहता, लेकिन यदि मुझे सलाह देने का अधिकार है, तो मैं स्पष्ट कहता हूँ कि तुम्हें इस

प्रस्ताव को कभी स्वीकार न करना चाहिए। तैमूर से यह बात बहुत दिन तक छिपी नहीं रह सकती कि तुम क्या हो? उस वक़्त क्या परिस्थिति होगी, मैं नहीं कहता। और यहाँ इस विषय में जो कुछ टीकाएँ होंगी, वह तुम मुझसे ज़्यादा जानती हो। यहाँ मैं मौजूद था और कुत्सा को मुँह न खोलने देता था पर वहाँ तुम अकेली रहोगी और कुत्सा को मनमाने आरोप करने का अवसर मिलता रहेगा।

उसकी पत्नी स्वेच्छा को इतना महत्त्व न देना चाहती थी। बोली -- मैंने सुना है, तैमूर निगाहों का अच्छा आदमी नहीं है। मैं किसी तरह तुझे न जाने दूँगी। कोई बात हो जाए तो सारी दुनिया हँसे। यों ही हँसने वाले क्या कम हैं?

इसी तरह स्त्री-पुरुष बड़ी देर तक ऊँच-नीच सुझाते और तरह-तरह की शंकाएँ करते रहे। लेकिन हबीब मौन साधे बैठी हुई थी। यजदानी ने समझा, हबीब भी उनसे सहमत है। इनकार की सूचना देने के लिए ही थी कि हबीब ने पूछा -- आप तैमूर से क्या कहेंगे?

''यही जो यहाँ तय हुआ।''

''मैंने तो अभी कुछ नहीं कहा।''

''मैंने तो समझा, तुम भी हमसे सहमत हो।''

''जी नहीं। आप उनसे जाकर कह दें मैं स्वीकार करती हूँ।''

माता ने छाती पर हाथ रखकर कहा -- यह क्या ग़ज़ब करती है बेटी। सोच दुनिया क्या कहेगी?

यजदानी भी सिर थामकर बैठ गए, मानो हृदय में गोली लग गई हो। मुँह से एक शब्द भी न निकला।

हबीब त्योरियों पर बल डालकर बोली -- अम्मीजान, मैं आपके हुक्म से जौ-भर भी मुँह नहीं फेरना चाहती। आपको पूरा अख़्तियार है, मुझे जाने दें या न दें लेकिन खल्क की खिदमत का ऐसा मौक़ा शायद मुझे ज़िंदगी में फिर न मिले। इस मौके को हाथ से खो देने का अफ़सोस मुझे उम्र-भर रहेगा। मुझे यक़ीन है कि अमीन तैमूर को मैं अपनी दियानत, बेगरजी और सच्ची वफ़ादारी से इनसान बना सकती हूँ और शायद उसके हाथों ख़ुदा के बंदो का ख़ून इतनी कसरत से न बहे। वह दिलेर है, मगर बेरहम नहीं। कोई दिलेर आदमी बेरहम नहीं हो सकता। उसने अब तक जो कुछ किया है, मज़हब के अंधे जोश में किया है। आज ख़ुदा ने मुझे वह मौक़ा दिया है कि मैं उसे दिखा दूँ कि मज़हब ख़िदमत का नाम है, लूट और क़त्ल का नहीं। अपने बारे में मुझे मुतलक़ अंदेशा नहीं है। मैं अपनी हिफ़ाज़त आप कर सकती हूँ। मुझे विश्वास है कि उपने फर्ज को नेकनीयती से अदा करके मैं दुश्मनों की जुबान भी बंद कर सकती हूँ, और मान लीजिए मुझे नाकामी भी हो, तो क्या सचाई और हक़ के लिए क़ुर्बान हो जाना ज़िंदगीं की सबसे शानदार फ़तह नहीं है। अब तक मैंने जिस उसूल पर ज़िंदगी बसर की है, उसने मुझे धोखा नहीं दिया और उसी के फ़ैज़ से आज मुझे यह दर्जा हासिल हुआ है, जो बड़े-बड़ों के लिए ज़िंदगी का ख़्वाब है। मेरे आजमाए हुए दोस्त मुझे कभी धोखा नहीं दे

सकते। तैमूर पर मेरी हक़ीक़त खुल भी जाए, तो क्या ख़ौफ़? मेरी तलवार मेरी हिफ़ाज़त कर सकती है। शादी पर मेरे ख़्याल आपको मालूम है। अगर मुझे कोई ऐसा आदमी मिलेगा, जिसे मेरी रूह क़बूल करती हो, जिसकी जात अपनी हस्ती खोकर मैं अपनी रूह को ऊँचा उठा सकूँ, तो मैं उसके क़दमों पर गिर कर अपने को उसकी नज़र कर दूँगी।

यजदानी ने ख़ुश होकर बेटी को गले लगा लिया। उसकी स्त्री इतनी जल्द आश्वस्त न हो सकी। वह किसी तरह बेटी को अकेली न छोड़ेगी। उसके साथ वह जाएगी।

4

कई महीने गुज़र गए। युवक हबीब तैमूर का वज़ीर है, लेकिन वास्तव में वही बादशाह है। तैमूर उसी की आँखों से देखता है, उसी के कानों से सुनता है और उसी की अक़्ल से सोचता है। वह चाहता है, हबीब आठों पहर उसके पास रहे। उसके सामीप्य में उसे स्वर्ग का-सा सुख मिलता है। समरकंद में एक प्राणी भी ऐसा नहीं, जो उससे जलता हो। उसके बर्ताव ने सभी को मुग्ध कर लिया है, क्योंकि वह इन्साफ़ से जौ-भर भी क़दम नहीं हटाता। जो लोग उसके हाथों चलती हुई न्याय की चक्की में पिस जाते है, वे भी उससे सदभाव ही रखते है, क्योंकि वह न्याय को ज़रूरत से ज़्यादा कटु नहीं होने देता।

संध्या हो गई थी। राज़्य कर्मचारी जा चुके थे। शमादान में मोम की बत्तियाँ जल रही थीं। अगर की सुगंध से सारा दीवानख़ाना महक रहा था। हबीब उठने ही को था कि चोबदार ने ख़बर दी-हुज़ूर जहाँपनाह तशरीफ़ ला रहे हैं।

हबीब इस ख़बर से कुछ प्रसन्न नहीं हुआ। अन्य मंत्रियों की भाँति वह तैमूर की सोहबत का भूखा नहीं है। वह हमेशा तैमूर से दूर रहने की चेष्टा करता है। ऐसा शायद ही कभी हुआ हो कि उसने शाही दस्तरख़ान पर भोजन किया हो। तैमूर की मजलिसों में भी वह कभी शरीक नहीं होता। उसे जब शांति मिलती है, तब एकांत में अपनी माता के पास बैठ कर दिन-भर का माजरा उससे कहता है और वह उस पर अपनी पंसद की मुहर लगा देती है।

उसने द्वार पर जाकर तैमूर का स्वागत किया। तैमूर ने मसनद पर बैठते हुए कहा -- मुझे ताज़्जुब होता है कि तुम इस जवानी में जाहिलों की-सी ज़िंदगी कैसे बसर करते हो हबीब। ख़ुदा ने तुम्हें वह हुस्न दिया है कि हसीन-से-हसीन नाजनीन भी तुम्हारी माशूक़ बनकर अपने को ख़ुशनसीब समझेगी। मालूम नहीं तुम्हें ख़बर है या नहीं, जब तुम अपने मुश्की घोड़े पर सवार होकर निकलते हो तो समरकंद की खिड़कियों पर हज़ारों आँखें तुम्हारी एक झलक देखने के लिए मुंतज़िर बैठी रहती हैं, पर तुम्हें किसी तरफ़ आँखें उठाते नहीं देखा। मेरा ख़ुदा गवाह है, मैं कितना चाहता हूँ कि तुम्हारे क़दमों के नक़्श पर चलूँ। मैं चाहता हूँ जैसे तुम दुनिया में रहकर भी दुनिया से अलग रहते हो, वैसे मैं भी रहूँ लेकिन मेरे पास न वह दिल है न वह दिमाग़। मैं हमेशा अपने-आप पर, सारी दुनिया पर दाँत पीसता रहता हूँ। जैसे मुझे हरदम ख़ून की प्यास लगी रहती है, तुम बुझने नहीं देते, और यह जानते हुए भी कि तुम जो कुछ

करते हो, उससे बेहतर कोई दूसरा नहीं कर सकता, मैं अपने गुस्से को क़ाबू में नहीं कर सकता। तुम जिधर से निकलते हो, मुहब्बत और रोशनी फैला देते हो। जिसको तुम्हारा दुश्मन होना चाहिए, वह तुम्हारा दोस्त है। मैं जिधर से निकलता नफ़रत और शुबहा फैलाता हुआ निकलता हूँ। जिसे मेरा दोस्त होना चाहिए वह भी मेरा दुश्मन है। दुनिया में बस एक ही जगह है, जहाँ मुझे आपियत मिलती है। अगर तुम मुझे समझते हो, यह ताज़ और तख़्त मेरे रास्ते के रोड़े है, तो ख़ुदा की क़सम, मैं आज इन पर लात मार दूँ। मैं आज तुम्हारे पास यही दरख्वास्त लेकर आया हूँ कि तुम मुझे वह रास्ता दिखाओ, जिससे मैं सच्ची ख़ुशी पा सकूँ। मैं चाहता हूँ, तुम इसी महल में रहो ताकि मैं तुमसे सच्ची ज़िंदगी का सबक सीखूँ।

हबीब का हृदय धक् से हो उठा। कहीं अमीन पर नारीत्व का रहस्य खुल तो नहीं गया। उसकी समझ में न आया कि उसे क्या जवाब दे। उसका कोमल हृदय तैमूर की इस करुण आत्मग्लानि पर द्रवित हो गया। जिसके नाम से दुनिया काँपती है, वह उसके सामने एक दयनीय प्रार्थी बना हुआ उसके प्रकाश की भिक्षा माँग रहा है। तैमूर की उस कठोर विकट शुष्क हिंसात्मक मुद्रा में उसे एक स्निग्ध मधुर ज्योति दिखाई दी, मानो उसका जागत् विवेक भीतर से झाँक रहा हो। उसे अपना जीवन, जिसमें ऊपर की स्फूर्ति ही न रही थी, इस विफल उद्योग के सामने तुच्छ जान पड़ा।

उसने मुग्ध कंठ से कहाँ -- हजूर इस ग़ुलाम की इतनी क़द्र करते हैं, यह मेरी ख़ुशनसीबी है, लेकिन मेरा शाही महल में रहना मुनासिब नहीं।

तैमूर ने पूछा -- क्यों?

इसलिए कि जहाँ दौलत ज़्यादा होती है, वहाँ डाके पड़ते हैं और जहाँ कद्र ज़्यादा होती है, वहाँ दुश्मन भी ज़्यादा होते हैं।

तुम्हारा भी कोई दुश्मन हो सकता है?

मैं ख़ुद अपना दुश्मन हो जाऊँगा। आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन ग़रूर है।

तैमूर को जैसे कोई रत्न मिल गया। उसे अपनी मनःतुष्टि का आभास हुआ। आदमी का सबसे बड़ा दुश्मन गरूर है इस वाक्य को मन-ही-मन दोहरा कर उसने कहा -- तुम मेरे क़ाबू में कभी न आओगे हबीब। तुम वह परींदे हो, जो आसमान में ही उड़ सकता है। उसे सोने के पिंजड़े में भी रखना चाहो तो फड़फड़ाता रहेगा। ख़ैर ख़ुदा हाफ़िज़।

यह तुरंत अपने महल की ओर चला, मानो उस रत्न को सुरक्षित स्थान में रख देना चाहता हो। यह वाक्य पहली बार उसने न सुना था पर आज इससे जो ज्ञान, जो आदेश जो सत्प्रेरणा उसे मिली, वह कभी न मिली थी।

5

इस्तखर के इलाक़े से बग़ावत की ख़बर आई है। हबीब को शंका है कि तैमूर वहाँ पहुँचकर कहीं क़त्लेआम न कर दे। वह शांतिमय उपायों से इस विद्रोह को ठंडा करके तैमूर को दिख़ाना

चाहता है कि सद्‌भावना में कितनी शक्ति है। तैमूर उसे इस मुहिम पर नहीं भेजना चाहता लेकिन हबीब के आग्रह के सामने बेबस है। हबीब को जब और कोई युक्ति न सूझी तो उसने कहा -- ग़ुलाम के रहते हुए हुज़ूर अपनी जान ख़तरे में डालें यह नहीं हो सकता।

तैमूर मुस्कराया -- मेरी जान की तुम्हारी जान के मुक़ाबले में कोई हक़ीक़त नहीं है हबीब। फिर मैंने तो कभी जान की परवाह न की। मैंने दुनिया में क़त्ल और लूट के सिवा और क्या यादगार छोड़ी। मेरे मर जाने पर दुनिया मेरे नाम को रोएगी नहीं, यक़ीन मानों। मेरे जैसे लुटेरे हमेशा पैदा होते रहेंगे, लेकिन ख़ुदा न करे, तुम्हारे दुश्मनों को कुछ हो गया, तो यह सल्तनत ख़ाक में मिल जाएगी, और तब मुझे भी सीने में खंजर चुभा लेने के सिवा और कोई रास्ता न रहेगा। मैं नहीं कह सकता हबीब तुमसे मैंने कितना पाया। काश, दस-पाँच साल पहले तुम मुझे मिल जाते, तो तैमूर तवारीख़ में इतना रूसियाह न होता। आज अगर ज़रुरत पड़े, तो मैं अपने जैसे सौ तैमूरों को तुम्हारे ऊपर निसार कर दूँ। यही समझ लो कि मेरी रूह को अपने साथ लिए जा रहे हो। आज मैं तुमसे कहता हूँ हबीब कि मुझे तुमसे इश्क है इसे मैं अब जान पाया हूँ। मगर इसमें क्या बुराई है कि मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ।

हबीब ने धड़कते हुए हृदय से कहा -- अगर मैं आपकी ज़रुरत समझूँगा तो इतला दूँगा।

तैमूर के दाढ़ी पर हाथ रख कर कहा -- जैसी तुम्हारी मर्ज़ी लेकिन रोज़ाना क़ासिद भेजते रहना, वरना शायद मैं बेचैन होकर चला जाऊँ।

तैमूर ने कितनी मुहब्बत से हबीब के सफ़र की तैयारियाँ की। तरह-तरह के आराम और तकल्लुफ़ी की चीज़ें उसके लिए जमा की। उस कोहिस्तान में यह चीज़ें कहाँ मिलेगी। वह ऐसा संलग्न था, मानो माता अपनी लड़की को ससुराल भेज रही हो।

जिस वक़्त हबीब फ़ौज के साथ चला, तो सारा समरकंद उसके साथ था और तैमूर आँखों पर रूमाल रखे, अपने तख़्त पर ऐसे सिर झुकाए बैठा था, मानो कोई पक्षी आहत हो गया हो।

6

इस्तख़र अरमनी ईसाइयों का इलाका था, मुसलमानों ने उन्हें परास्त करके वहाँ अपना अधिकार जमा लिया था और ऐसे नियम बना दिए थे, जिससे ईसाइयों को पग-पग अपनी पराधीनता का स्मरण होता रहता था। पहला नियम जज़िये का था, जो हरेक़ ईसाई को देना पड़ता था, जिससे मुसलमान मुक्त थे। दूसरा नियम यह था कि गिरजों में घंटा न बजे। तीसरा नियम का क्रियात्मक विरोध किया और जब मुसलमान अधिकारियों ने शस्त्र-बल से काम लेना चाहा, तो ईसाइयों ने बग़ावत कर दी, मुसलमान सूबेदार को क़ैद कर लिया और क़िले पर सलीबी झंडा उड़ने लगा।

हबीब को यहाँ आज दूसरा दिन है पर इस समस्या को कैसे हल करे। उसका उदार हृदय कहता था, ईसाइयों पर इन बँधनों का कोई अर्थ नहीं। हरेक धर्म का समान रूप से

आदर होना चाहिए, लेकिन मुसलमान इन क़ैदों को हटा देने पर कभी राजी न होंगे। और यह लोग मान भी जाए तो तैमूर क्यों मानने लगा। उसके धार्मिक विचारों में कुछ उदारता आई है, फिर भी वह इन क़ैदों को उठाना कभी मंजूर न करेगा, लेकिन क्या वह ईसाइयों को सज़ा दे कि वे अपनी धार्मिक स्वाधीनता के लिए लड़ रहे हैं जिसे वह सत्य समझता है, उसकी हत्या कैसे करे। नहीं, उसे सत्य का पालन करना होगा, चाहे इसका नतीज़ा कुछ भी हो। अमीन समझेंगे मैं ज़रुरत से ज़्यादा बढ़ा जा रहा हूँ। कोई मुज़ायक़ा नहीं।

दूसरे दिन हबीब ने प्रात काल डंके की चोट ऐलान कराया -- जज़िया माफ़ किया गया, शराब और घंटों पर कोई क़ैद नहीं है।

मुसलमानों में तहलका पड़ गया। यह कुफ्र है, हरामपरस्ती है। अमीन तैमूर ने जिस इस्लाम को अपने ख़ून से सींचा, उसकी जड़ उन्हीं के वज़ीर हबीब पाशा के हाथों ख़ुद रही है, पासा पलट गया। शाही फ़ौज मुसलमानों से जा मिली। हबीब ने इस्तखर के क़िले में पनाह ली। मुसलमानों की ताक़त शाही फ़ौज के मिल जाने से बहुत बढ़ गई थी। उन्होंने क़िला घेर लिया और यह समझकर कि हबीब ने तैमूर से बग़ावत की है, तैमूर के पास इसकी सूचना देने और परिस्थिति समझाने के लिए क़ासिद भेजा।

7

आधी रात गुज़र चुकी थी। तैमूर को दो दिनों से इस्तखर की कोई ख़बर न मिली थी। तरह-तरह की शंकाएँ हो रही थी। मन में पछतावा हो रहा था कि उसने क्यों हबीब को अकेला जाने दिया। माना कि वह बड़ा नीतिकुशल है, पर बग़ावत कहीं ज़ोर पकड़ गई तो मुट्ठी-भर आदमियों से वह क्या कर सकेगा। और बग़ावत यक़ीनन ज़ोर पकड़ेगी। वहाँ के ईसाई बला के सरकश है। जब उन्हें मालूम होगा कि तैमूर की तलवार में जंग लग गया और उसे अब महलों की ज़िंदगीं पसंद है, तो उनकी हिम्मत दूनी हो जाएगी। हबीब कहीं दुश्मनों से घिर गया, तो बड़ा ग़ज़ब हो जाएगा।

उसने अपने जानू पर हाथ मारा और पहलू बदलकर अपने ऊपर झुझलाया। वह इतना पस्त हिम्मत क्यों हो गया। क्या उसका तेज़ और शौर्य उससे विदा हो गया जिसका नाम सुनकर दुश्मन में हड़कंप मच जाता था, वह आज अपना मुँह छिपाकर महलों में बैठा हुआ है। दुनिया की आँखों में इसका यही अर्थ हो सकता है कि तैमूर अब मैदान का शेर नहीं, कालिन का शेर हो गया। हबीब फरिश्ता है, जो इनसान की बुराइयों से वाक़िफ़ नहीं। जो रहम और साफ़दिली और बेग़रज़ी का देवता है, वह क्या जाने इनसान कितना शैतान हो सकता है? अमन के दिनों में तो ये बातें कौम और मुल्क को तरक्क़ी के रास्ते पर ले जाती है पर जंग में, जबकि शैतानी जोश का तूफान उठता है इन ख़ुशियों की गुंजाइश नहीं। उस वक़्त तो उसी की जीत होती है, जो इनसानी ख़ून का रंग खेले, खेतों-खलिहानों को जलाएँ, जंगलों को बसाए और बस्तियों को वीरान करे। अमन का क़ानून जंग के क़ानून से जुदा है।

सहसा चौकिदार ने इस्तखर से एक क़ासिद के आने की ख़बर दी। क़ासिद ने ज़मीन चूमी और एक किनारें अदब से खड़ा हो गया। तैमूर का रोब ऐसा छा गया कि जो कुछ कहने आया था, वह भूल गया।

तैमूर ने त्योरियाँ चढ़ाकर पूछा -- क्या ख़बर लाया है। तीन दिन के बाद आया भी तो इतनी रात गए।

क़ासिद ने फिर ज़मीन चूमी और बोला -- ख़ुदावंद वज़ीर साहब ने जज़िया मुआफ़ कर दिया।

तैमूर गरज उठा -- क्या कहता है, जज़िया माफ़ कर दिया?

हाँ ख़ुदावंद।

किसने।

वज़ीर साहब ने।

किसके हुक्म से।

अपने हुक्म से हुजूर।

हूँ।

और हुजूर, शराब का भी हुक्म हो गया है।

हूँ।

गिरजों में घंटों को बजाने का भी हुक्म हो गया है।

हूँ।

और ख़ुदावंद ईसाइयों से मिलकर मुसलमानों पर हमला कर दिया।

तो मैं क्या करूँ?

हुजूर हमारे मालिक है। अगर हमारी कुछ मदद न हुई तो वहाँ एक मुसलमान भी ज़िंदा न बचेगा।

हबीब पाशा इस वक़्त कहाँ है?

इस्तखर के क़िले में हुजूर।

और मुसलमान क्या कर रहे है?

हमने ईसाइयों को क़िले में घेर लिया है।

उन्हीं के साथ हबीब को भी।

हाँ हुजूर, वह हुजूर से बाग़ी हो गए।

और इसलिए मेरे वफ़ादार इस्लाम के ख़ादिमों ने उन्हें क़ैद कर रखा है। मुमकिन है, मेरे पहुँचते-पहुँचते उन्हें क़त्ल भी कर दें। बदजात, दूर हो जा मेरे सामने से। मुसलमान समझते है, हबीब मेरा नौकर है और मैं उसका आका हूँ। यह ग़लत है, झूठ है। इस सल्तनत का मालिक हबीब है, तैमूर उसका अदना ग़ुलाम है। उसके फ़ैसले में तैमूर दस्तंदाज़ी नहीं कर सकता। बेशक जज़िया मुआफ़ होना चाहिए। मुझे मजाज़ नहीं कि दूसरे मज़हब वालों से उनके

ईमान का तावान लूँ। कोई मजाज़ नहीं है, अगर मस्जिद में अजान होती है, तो कलीसा में घंटा क्यों बजे। घंटे की आवाज़ में कुफ्र नहीं है। क़ाफ़िर वह है, जा दूसरों का हक़ छीन ले जो ग़रीबों को सताए, दग़ाबाज़ हो, ख़ुदगरज हो। क़ाफ़िर वह नहीं, जो मिट्टी या पत्थर के एक टुकड़े में ख़ुदा का नूर देखता हो, जो नदियों और पहाड़ों में, दरख़्तों और झाड़ियों में ख़ुदा का जलवा पाता हो। यह हमसे और तुझसे ज़्यादा ख़ुदापरस्त है, जो मस्जिद में ख़ुदा को बंद नहीं समझता ही कुफ्र है। हम सब ख़ुदा के बंदे है, सब। बस जा और उन बागी मुसलमानों से कह दे, अगर फौरन मुहासरा न उठा लिया गया, तो तैमूर क़यामत की तरह आ पहुँचेगा।

क़ासिद हतबुद्धि-सा खड़ा ही था कि बाहर ख़तरे का बिगुल बज उठा और फ़ौजें किसी समर-यात्रा की तैयारी करने लगी।

8

तीसरे दिन तैमूर इस्तखर पहुँचा, तो क़िले का मुहासरा उठ चुका था। क़िले की तोपों ने उसका स्वागत किया। हबीब ने समझा, तैमूर ईसाईयों को सज़ा देने आ रहा है। ईसाइयों के हाथ-पाँव फूले हुए थे, मगर हबीब मुक़ाबले के लिए तैयार था। ईसाइयों के स्वप्न की रक्षा में यदि जान भी जाए, तो कोई ग़म नहीं। इस मुआमले पर किसी तरह का समझौता नहीं हो सकता। तैमूर अगर तलवार से काम लेना चाहता है, तो उसका जवाब तलवार से दिया जाएगा।

मगर यह क्या बात है? शाही फ़ौज सफ़ेद झंडा दिखा रही है। तैमूर लड़ने नहीं सुलह करने आया है। उसका स्वागत दूसरी तरह का होगा। ईसाई सरदारों को साथ लिए हबीब क़िले के बाहर निकला। तैमूर अकेला घोड़े पर सवार चला आ रहा था। हबीब घोड़े से उतर कर आदाब बजा लाया। तैमूर घोड़े से उतर पड़ा और हबीब का माथा चूम लिया और बोला -- मैं सब सुन चुका हूँ हबीब। तुमने बहुत अच्छा किया और वही किया जो तुम्हारे सिवा दूसरा नहीं कर सकता था। मुझे जज़िया लेने का या ईसाइयों से मज़हबी हक़ छीनने का कोई मजाज़ न था। मैं आज दरबार करके इन बातों की तसदीक़ कर दूँगा और तब मैं एक ऐसी तरकीब बताऊँगा जो कई दिन से मेरे जेहन में आ रही है और मुझे उम्मीद है कि तुम उसे मंजूर कर लोगे। मंजूर करना पड़ेगा।

हबीब के चेहरे का रंग उड़ गया था। कहीं हक़ीक़त खुल तो नहीं गई। वह क्या तरकीब है, उसके मन में खलबली पड़ गई।

तैमूर ने मुस्कराकर पूछा -- तुम मुझसे लड़ने को तैयार थे।

हबीब ने शरमाते हुए कहा -- हक़ के सामने अमीन तैमूर की भी कोई हक़ीक़त नहीं।

बेशक-बेशक। तुममें फ़रिश्तों का दिल है, तो शेरों की हिम्मत भी है, लेकिन अफ़सोस यही है कि तुमने यह गुमान ही क्यों किया कि तैमूर तुम्हारे फ़ैसले को मंसूख कर सकता है। यह तुम्हारी जात है, जिसने तुझे बतलाया है कि सल्तनत किसी आदमी की जायदाद नहीं

बल्कि एक ऐसा दरख़्त है, जिसकी हरेक शाख और पती एक-सी ख़ुराक पाती है।

दोनों क़िले में दाख़िल हुए। सूरज डूब चुका था। आन-की-बान में दरबार लग गया और उसमें तैमूर ने ईसाइयों के धार्मिक अधिकारों को स्वीकार किया।

चारों तरफ़ से आवाज़ आई -- ख़ुदा हमारे शहंशाह की उम्र दराज़ करे।

तैमूर ने उसी सिलसिले में कहा -- दोस्तों, मैं इस दुआ का हक़दार नहीं हूँ। जो चीज़ मैंने आपसे जबरन ली थी, उसे आपको वापस देकर मैं दुआ का काम नहीं कर रहा हूँ। इससे कही ज़्यादा मुनासिब यह है कि आप मुझे लानत दें कि मैंने इतने दिनों तक... तभी चारों ओर आवाज़ आई -- मरहबा। मरहबा।

दोस्तों उन हक़ों के साथ-साथ मैं आपकी सल्तनत भी आपको वापस करता हूँ क्योंकि ख़ुदा की निगाह में सभी इनसान बराबर है और किसी क़ौम या शख़्स को दूसरी क़ौम पर हुकूमत करने का अख़्तियार नहीं है। आज से आप अपने बादशाह है। मुझे उम्मीद है कि आप भी मुस्लिम आज़ादी को उसके जायज़ हक़ों से महरूम न करेंगे। मगर कभी ऐसा मौक़ा आए कि कोई जाबिर कौम आपकी आज़ादी छीनने की कोशिश करे, तो तैमूर आपकी मदद करने को हमेशा तैयार रहेगा।

9

क़िले में ज़श्न खत्म हो चुका है। उमरा और हुक्काम रुख़सत हो चुके हैं। दीवाने ख़ास में सिर्फ़ तैमूर और हबीब रह गए है। हबीब के मुख पर आज स्मित हास्य की वह छटा है, जो सदैव गंभीरता के नीचे दबी रहती थी। आज उसके कपोलों पर जो लाली, आँखों में जो नशा, अंगों में जो चंचलता है, वह और कभी नज़र न आई थी। वह कई बार तैमूर से शोखिया कर चुका है, कई बार हँसी कर चुका है, उसकी युवती चेतना, पद और अधिकार को भूलकर चहकती फिरती है।

सहसा तैमूर ने कहा -- हबीब, मैंने आज तक तुम्हारी हरेक बात मानी है। अब मैं तुमसे यह तज़वीज करता हूँ जिसका मैंने ज़िक्र किया था, उसे तुम्हें क़बूल करना पड़ेगा।

हबीब ने धड़कते हुए हृदय से सिर झुकाकर कहा -- फरमाइए।

पहले वायदा करो कि तुम क़बूल करोगे?

मैं तो आपका ग़ुलाम हूँ।

नहीं तुम मेरे मालिक हो, मेरी ज़िंदगी की रोशनी हो, तुमसे मैंने जितना फ़ैज़ पाया है, उसका अंदाज़ा नहीं कर सकता। मैंने अब तक सल्तनत को अपनी ज़िंदगी की सबसे प्यारी चीज़ समझा था। इसके लिए मैंने वह सब कुछ किया जो मुझे न करना चाहिए था। अपनों के ख़ून से भी इन हाथों को दाग़दार किया ग़ैरों के ख़ून से भी। मेरा काम अब ख़त्म हो चुका। मैंने बुनियाद जमा दी इस पर महल बनाना तुम्हारा काम है। मेरी यही इल्तजा है कि आज से तुम इस बादशाहत के अमीन हो जाओ, मेरी ज़िंदगी में भी और मरने के बाद भी।

हबीब ने आकाश में उड़ते हुए कहा -- इतना बड़ा बोझ। मेरे कंधे इतने मज़बूत नहीं है।

तैमूर ने दीन आग्रह के स्वर में कहा -- नहीं मेरे प्यारे दोस्त, मेरी यह इल्तजा माननी पड़ेगी।

हबीब की आँखों में हँसी थी, अधरों पर संकोच। उसने आहिस्ता से कहा -- मंजूर है।

तैमूर ने प्रफुल्लित स्वर में कहाँ -- ख़ुदा तुम्हें सलामत रखे।

लेकिन अगर आपको मालूम हो जाए कि हबीब एक कच्ची अक़्ल की क्वारी बालिका है तो।

तो वह मेरी बादशाहत के साथ मेरे दिल की भी रानी हो जाएगी।

आपको बिल्कुल ताज़्जुब नहीं हुआ।

मैं जानता था।

कब से।

जब तुमने पहली बार अपने ज़ालिम आँखों से मुझे देखा।

मगर आपने छिपाया ख़ूब।

तुम्हीं ने सिखाया। शायद मेरे सिवा यहाँ किसी को यह बात मालूम नहीं।

आपने कैसे पहचान लिया।

तैमूर ने मतवाली आँखों से देखकर कहा -- यह न बताऊँगा।

यही हबीब तैमूर की बेगम हमीदों के नाम से मशहूर है।

❑

डॉ. भगवानदास

नेताजी सुभाष चंद्र बोस एवं भारतीय शासन प्रणाली

यह सर्वविदित है कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस का चयन भारतीय सिविल सेवा जैसी प्रतिष्ठित सेवा के लिए हुआ था, परंतु उसी समय भारत में जलियाँवाला बाग हत्याकांड, हंटर कमेटी की जाँच रिपोर्ट, पंजाब का मार्शल लॉ, रॉलेक्ट एक्ट इत्यादि कारणों से भारत का राजनैतिक माहौल काफ़ी उत्तेजनापूर्ण हो गया था। इन परिस्थितयों में तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध असहयोग आंदोलन छेड़ने की तैयारी की जा रही थी, ऐसे उत्तेजनापूर्ण राजनीतिक माहौल की ख़बरें नेताजी को इंग्लैंड में पहुँच रही थी, जिनसे प्रभावित होकर उन्हें भारतीय सिव्हिल सेवा में बने रहना बोझिल होता जा रहा था। अंततः वह 20 अप्रैल, 1921 को इस प्रतिष्ठित सेवा से त्यागपत्र देकर भारत वापस लौट आते हैं। भारत लौटते ही वे महात्मा गांधी से मुलाकात करते हैं, कई मुद्दों पर उनसे अपनी असहमतियों के बावजूद भी असहयोग आंदोलन में कूद पड़ते हैं तथा अपनी गिरफ़्तारी भी देते हैं।

वैचारिक स्तर पर महात्मा गांधी के साथ तीव्र मतभेदों के चलते वह कांग्रेस से त्यागपत्र देकर अलग दल फारवर्ड ब्लॉक का गठन करते हैं, इसी दौरान, उन्हें कोलकता में ब्रिटिश स्मारकों को हटाने का अभियान छेड़ने पर राजद्रोह के आरोप में जेल भेज दिया जाता है। जेल में रहने के दौरान वह गंभीर रूप से अस्वस्थ्य हो जाते हैं। अतः मेडिकल बोर्ड की अनुशंसा पर उन्हें जेल से हटाकर अपने घर में ही कड़े पुलिस पहरे में में बंद कर दिया जाता है। अपने घर की क़ैद में रहने के दौरान उन्हें आभास होता है कि भारत में रहकर अंग्रेज़ी हुकूमत को भारत भूमि से उखाड़ फेंकने का आंदोलन चलाने की अपेक्षा, इसे विदेशों से अधिक सार्थक एवं प्रभावशाली ढंग से चलाया जा सकता है। अतः वे पठान के भेष में 18 जनवरी, 1941 को घर से भागकर, पेशावर, जलालाबाद, काबुल, माक्को होते जर्मनी पहुँचने में सफल होते हैं।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस भले ही भारत के राजनीतिक जीवन में केवल 20 वर्ष दृष्टिगोचर होते हैं। इन 20 वर्षों में भी वे 5 वर्ष भारत से यूरोप निर्वासन में तथा शेष 15 वर्षो में से 11 बार जेल जाते हैं। इतनी अल्पकालिक राजनैतिक दस्तक के बावजूद, उन्होंने भारत के जनमानस पर अपने विचारों की अमिट छाप छोड़ी है, यहाँ कि शासन व्यवस्था के संबंध में अपने विचारों को नई उष्मा दी है। प्रश्न है कि आख़िर नेताजी भारत में किस प्रकार की शासन प्रणाली चाहते थे?

नेता जी ने सन् 1921 से 1938 तक गांधीजी के साथ कई असहमतियों के वाबजूद भी मिलकर अंग्रेज़ी सत्ता के विरुद्ध संघर्ष किया। वह गांधी जी के प्रति श्रद्धावान् तो रहे, लेकिन स्वयं गांधीवादी कभी नहीं बने। गांधीजी की रीति नीति, अस्थिर एवं काल्पनिक सोच, सुनहरे स्वप्न, अहिंसा के प्रति प्रतिबद्धता आदि के वे कभी समर्थक नहीं रहे, बल्कि इन सब धारणाओं के प्रखर आलोचक रहे। उनके अनुसार गांधी एवं गांधीवाद में समाज निर्माण की कोई वास्तविक योजना नहीं थी। सन् 1921 के असहयोग आंदोलन के स्थगन, 1931 के गांधी इरविन समझौते पर उन्होंने खुलकर गांधी जी की आलोचना की। परिणाम स्वरूप गांधी एवं गांधीवादी उन्हें एवं उनकी नीतियों को वामपंथी कहते थे, लेकिन नेताजी साम्यवाद के भी आलोचक थे, क्योंकि उनकी नज़रों में साम्यवाद सभी अच्छाइयों के बावजूद अध्यामिकता एवं व्यक्ति की धार्मिक आस्था को कोई महत्त्व नहीं देता, जबकि नेताजी का न केवल पालन पोषण, बल्कि विद्यार्थी जीवन भी आध्यात्मिकता की बुनियाद पर खड़ा था। दूसरे नेता जी की दृष्टि में साम्यवाद राष्ट्रवाद को स्वीकार न कर, राष्ट्रविहीन प्रणाली की बात करता है, जबकि नेताजी की सोच प्रखर राष्ट्रवादी की थी। अपनी इन दो बुनियादी असहमतियों के कारण नेताजी रूसी साम्यंवाद को पूरी तरह स्वीकार नहीं करते। उन्हें न तो विक्टोरियन युगीन इंग्लैड का लोकतंत्र पसंद था और न ही 19वीं सदी के फ्रांस का पूँजीवादी लोकतंत्र स्वीकार्य था। इसी प्रकार नेता जी को न तो गांधीवाद स्वीकार्य था न ही वह साम्यवाद एवं पश्चिमी लोकतंत्र से सहमत थे तब क्या नेताजी फॉसीवाद एवं नाजीवाद को पसंद करते थे? चूँकि इन दोनों विचारधाराओं का आधार नस्लीय श्रेष्ठता था तथा दोनों ही देश में एक नस्ल एवं एक धर्म के लोगों की शासन पद्धति में एवं सहभागिता में विश्वास करती थी। अतः नेताजी इन्हें भी पूरी तरह पसंद नहीं करते थे, क्योंकि नेताजी धार्मिक एवं सामाजिक समन्वय को राष्ट्र की बुनियाद मानते थे। अब यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि जब नेता जी गांधीवाद, साम्यवाद, प्रजातंत्र, फॉसीवाद एवं नाजीवाद इत्यादि शासन प्रणाली के पक्षधर नहीं थे, तब वे भारत में किस तरह की राजनीति प्रणाली स्थापित करने के पक्षधर थे? इस प्रश्न का उत्तर नेताजी द्वारा 1944 में जापान के टोक्यो विश्वविद्यालय में दिए गये संबोधन में ख़ोजा जा सकता है। 1944 में टोक्यो में छात्रों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि हमें भारत में प्रजातांत्रिक संस्थाओं का अनुभव है, हमने फ्रांस, अमेरिका, इंग्लैंड जैसे देशों में भी प्रजातांत्रिक समस्याओं की कार्यप्रणाली का अध्ययन किया है और हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्रजातांत्रिक प्रणाली अपना कर हम स्वतंत्र भारत की समस्याओं का हल नहीं सुलझा सकते। अतः 20 वर्ष तक एक तानाशाही प्रणाली लागू करनी है। 1944 में नेताजी का विचार था कि विश्व में राजनीतिक विचारधारा के विकास की अगली अवस्था फॉसीवाद एवं साम्यवाद के समन्वय की होगी''[1] इसी को वह वास्तविक साम्यवाद मानते थे और उनकी भावना थी कि स्वतंत्र भारत को इसी वास्तविक साम्यवाद अर्थात राष्ट्रवाद एवं स्थिरता के गुणों से भरपूर फॉसीवाद तथा उत्पादन के साधनों पर सामाजिक नियंत्रण और सर्वहारा वर्ग की प्रमुखता से संपन्न साम्यवाद को स्वीकार करने हेतु तैयार रहना चाहिए। अपनी कृति 'The

Indian Struggle' में इसी प्रणाली की वकालत करते हुए वे कहते हैं कि फॉसीवाद एवं साम्यवाद के मध्य विषमताओं के बावजूद कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो दोनों में समान रूप से विद्यमान हैं जैसा कि फॉसीवाद एवं साम्यवाद दोनों व्यक्ति के ऊपर राज्य की सर्वोच्चता में विश्वास करते हैं। दोनों संसदीय लोकतंत्र की निंदा करते हैं, दोनों को एक दल के शासन में विश्वास है। दोनों को एक दल के अधिनायकतंत्र में विश्वास है। दोनों को देश की नियोजित औद्योगिक पुनर्गठन में विश्वास है। नेताजी के अनुसार इन दोनों प्रणालियों की यही उभयनिष्ठ विशेषताएँ भारत की नई समन्वय प्रणाली का आधार होनी चाहिए। नेताजी का स्पष्ट मानना था कि भारत में रूसी साम्यवाद पनप नहीं सकता, क्योंकि इसकी मूल मान्यता धर्म का विरोध है, जबकि भारतीय जनमानस में धर्म की जड़ें गहरी हैं। इसी प्रकार, भारतीय समाज विविधतापूर्ण है जहाँ धार्मिक एवं सामाजिक सह-अस्तित्व अनिवार्य है। अतः नाजीवाद अथवा फॉसीवाद नस्लीय श्रेष्ठता एवं अल्पसंख्यकों का दमन पर आधारित होने के कारण इससे भी पूरी तरह से नहीं अपनाया जा सकता। वही पूँजीवादी लोकतंत्र भारत के लोगों की ग़रीबी, भुखमरी, महामारी, अशिक्षा, बेरोज़गारी जैसी मुँह बाए खड़ी समस्याओं का समाधान नहीं कर सकेगा। अतः नेताजी के अनुसार टर्की के कमाल पाशा जैसी तानाशाही व्यवस्था न्यूनतम 20 वर्षों के लिए आवश्यक होगी, ताकि दलगत शासन प्रणाली की बुराइयों तालाबंदी, हिंसा, हड़ताल, तोड़फोड़ से उभर कर सारी अनुशासन ऊर्जा उन्पादन राष्ट्र की ख़ुशहाली में समर्पित की जा सके।

सुभाषचंद्र बोस ने 10 जून, 1933 को लंदन में अपने भाषण में कहा था कि ''स्वतंत्र भारत पूँजीपतियों, ज़मींदारों एवं जातियों का देश नहीं होगा, स्वतंत्र भारत एक सामाजिक एवं राजनीतिक लोकतंत्र होगा''[2] अपने इस भाषण में नेता जी ने प्यूरिटन क्रांति, फ्रांस की क्रांति, रूसी क्रांति एवं मार्क्सवादी समाजवाद द्वारा मानव समाज की उन्नति में दिए गए योगदान की प्रशंसा की थी। नेताजी के इस भाषण में निहित शब्दों एवं भावना से स्पष्ट होता है कि नेताजी किस प्रकार की प्रणाली भारत में स्थापित करने के पक्षधर थे। वे राजनीतिक प्रजातंत्र का आधार, सामाजिक प्रजातंत्र को बनाना चाहते थे, जिसमें जन्म, जाति एवं संप्रदाय पर आधारित सामाजिक आर्थिक भेदभाव न हो, सभी को जाति कुल से परे समान अवसर मिले।

नेताजी देश के विद्यार्थी जगत् को राजनीति से पृथक् रखने के पक्षधर कभी नहीं रहे। उनके अनुसार एक ग़ुलाम जाति के पास राजनीति के अलावा कुछ नहीं होता, पराधीन देश की हर समस्या राजनीतिक समस्या होती है। अतः छात्रों को इन समस्याओं से दूर नहीं रखा जा सकता। छात्रों का राजनीति में भाग लेना उनके चरित्र-निर्माण एवं पौरुष के लिए आवश्यक है तथा विश्वविद्यालयों का प्रयास क़िताबी कीड़ा नहीं बल्कि ऐसे चरित्रवान् मनुष्य बनाने चाहिए जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में अपने प्रयासों से देश को महान् बना सकें।

नेताजी सुभाषचंद्र बोस स्वतंत्र भारत में पूँजीपतियों, ज़मींदारों, के हाथ में शासन सत्ता नहीं देखना चाहते थे, वे समाज में जातीवाद व उस पर आधारित असमानता को ध्वस्त करने के पक्षधर थे। वे ग़रीबी उन्मूलन के लिए वह ज़मींदारी प्रथा के अंत एवं भूमि के समान वितरण

पर उनका ज़ोर था। उनका मानना था कि कृषि उत्पादन के लिए वैज्ञानिक पद्धतियों का प्रयोग, औद्योगिकरण, कृषि, शिल्प तथा सामाजिक कल्याण के लिए धन की आवश्यकता होगी। अतः वैज्ञानिक एवं क्रमबद्ध विकास योजना का मार्ग अपनाना आवश्यक होगा। इस मुद्दे पर वह नेहरू के समीप वैचारिक रूप से खड़े दिखाई देते हैं। कांग्रेस में रहने के दौरान वे हमेशा शोषित जनता का पक्ष लेते रहे। गांधी जी ज़मींदार एवं किसान, श्रमिक एवं पूँजीपतियों के मध्य मेल मिलाप एवं समन्वय के पक्षधर थे, लेकिन गांजी जी की इस मान्यता के विपरीत सुभाष चंद्र बोस श्रमिकों एवं पूँजीपतियों तथा किसानों एवं ज़मींदारों के मध्य संघर्ष आवश्यक मानते थे और वे यह संघर्ष जमीदारी की समाप्ति एवं भूमि के समान वितरण से उपजे विचारों के रूप में देखते थे। इन विचारों से पुनः स्पष्ट हो जाता है कि वे वामपंथी स्वभाव के थे तथा वह भारत में साम्यवादी व्यवस्था को तो चाहते थे लेकिन साम्यवाद की बुनियाद धर्म विरोध एवं राष्ट्रविहीन प्रणाली पर टिकी थी इसलिए वह इसे पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पा रहे थे, चूँकि फॉसीवाद व्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्र संसदीय लोकतंत्र की जगह एक व्यक्ति के अधिनायकवाद एवं साम्यवाद की भाँति अर्थव्यवस्था का उद्योगीकरण तथा नियोजित विकास की बात करता है। अतः नेताजी की नज़रों में ग़रीबी, निरक्षरता, सामाजिक असमानता, धार्मिक उन्माद, महामारी, भुखमरी जैसी समस्याओं से जूझ रहे नवोदित स्वतंत्र भारत को इन दोनों प्रणाली (साम्यवाद एवं फॉसीवाद) की आवश्यकता है अतः उन्होंने स्थिर भारत के लिए इनके मिले-जुले स्वरूप की वकालत की थी, जिसे उन्होंने Real Communism अर्थात् वास्तविक साम्यवाद की संज्ञा दी थी। उनका मानना था कि भारत अपनी नवोदित अवस्था में संसदीय लोकतंत्र एवं दलीय प्रणाली की बुराइयों को सहन करने की स्थिति में नहीं है। भारत की अविकसित एवं अशिक्षित जनता के लिए सैनिक दृष्टि से अनुशासित एकताबध्द्ध प्रजातांत्रिक प्रणाली आवश्यक है, जिसमें समर्थ एवं सुदृढ़ केंद्रीय शासन हो जिसे बाद में संघीय शासन में बदला जा सके। नेताजी की इस यथार्थवादी राजनीति अवधारणा की परिकल्पना से गांधी एवं गांधीवादियों के सहमत होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता, लेकिन भारत का वामपंथ उस समय के वामपंथी समाचार पत्र भी नेताजी से असहज महसूस कर रहे थे। वामपंथी उनके सम्मुख नेताजी के संबंध में उनके जापानी साम्राज्यवाद एवं गुलामी के समर्थक होने का आरोप लगा रहे थे। नेहरू जैसे वामपंथी सहलोकतंत्री भी अपनी राजनीतिक आकांक्षा एवं नेता जी से मिलने वाली संभावित चुनौतियों को दृष्टिगत रखते हुए उनसे सहमत नहीं थे। इस प्रकार अपनी राजनीतिक अवधारणा की प्रस्थापना में नेताजी अकेले थे। नेहरू ने तो रानीखेत के अधिवेशन में यहाँ तक कह डाला था कि ''अगर सुभाष बोस सेना के साथ भारत में क़दम रखते हैं तो मैं तलवार लेकर उनका मुक़ाबला करूँगा''[3] नेहरू के अपने इस सार्वजनिक वक्तव्य का आयाम था कि वह नेता जी को फॉसीवाद एवं जापानी साम्राज्यवाद का समर्थक मानते हुए उनका तलवार से मुक़ाबला करने की बात कह रहे थे।

जापानी साम्राज्य, भारत पर थोपने एवं उसके समर्थक होने के आरोपों पर नेताजी काफ़ी

आहत हुए। उन्होंने अपनी वेदना एवं रणनीति को स्पष्ट करते हुए लिखा कि इस सत्य को जानने के लिए क्या धुरी राष्ट्र हमें हमारी स्वतंत्रता के युद्ध में सहायता देने के लिए तैयार होंगे? मुझे भारत छोड़ना पड़ा, अपना घर, अपनी मातृभूमि को छोड़ने का अंतिम निर्णय करने से पहले मुझे इस बात का निश्चय करना था कि क्या विदेशों से सहायता लेना उचित होगा? मैंने इससे पहले समस्त विश्व की क्रांतियों का इतिहास यह ख़ोज़ निकालने के लिए पढ़ा था कि अन्य राष्ट्रों ने अपनी स्वतंत्रता किन उपायों से प्राप्त की थी? मुझे एक भी ऐसा उदाहरण नहीं मिला, जिसमें किसी ग़ुलाम जाति ने बिना किसी प्रकार की विदेशी सहायता के अपनी स्वतंत्रता प्राप्त की हो।''[4] इसके अतिरिक्त जहाँ एक ब्रिटिश साम्राज्य जैसा शक्तिशाली साम्राज्य समस्त संसार में भीख की झोली लेकर जा सकता है, तब भारतीयों के लिए जो ग़ुलाम एवं निःसशस्त्र हैं, बाहर से ऋण स्वरूप सहायता लेने में क्या आपत्ति हो सकती है।''[5]

अपनी वेदना को प्रकट करते हुए आगे नेता जी कहते हैं कि विदेश में एक जोख़िम भरी ख़ोज़ के लिए जाने से पहले मैंने केवल अपना जीवन एवं भावी जीवन ही ख़तरे में नहीं डाला, अपितु अपने दल को भी ख़तरे में डाल दिया है। यदि मुझे किंचित मात्र भी इस बात का अनुमान होता कि बाहर से बिना कार्यवाही किए हम स्वतंत्रता प्राप्त कर सकते हैं तो मैं इस संकट काल में भारत को कभी नहीं छोड़ता। मुझे दो बातों का पूरा भरोसा है कि प्रथम ऐसा स्वर्ण अवसर एक शताब्दी तक भी नहीं आएगा दूसरा कि हम केवल अपने देश के अंदर अपने प्रयत्नों से बिना बाहर से कार्यवाही किए अपनी स्वतंत्रता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यही कारण था कि मैंने समुद्र में डुबकी लगाने का निश्चय किया है।''[6]

स्वतंत्रता हेतु अपने द्वारा किए गए एवं किए जा रहे सतत् प्रयासों के बारे में देशवासियों को आश्वस्त कराते हुए नेताजी लिखते हैं कि भारत से बाहर निकलने के बाद मेरा पहला प्रयत्न यह रहा कि जहाँ कहीं भी मुझे मेरे देशवासी मिले, मैंने उन्हें संगठित किया। मैंने उन्हें सभी जगह जागृत एवं देश की स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु चिंतित पाया, तभी मैंने उन सरकारों से जो हमारे शत्रुओं के विरुद्ध लड़ रही थी, यह जानने के लिए बात की कि भारत के प्रति उनका रुख़ कैसा है? मुझे ज्ञात हुआ कि वर्षों से अंग्रेज़ों के प्रचार के विरुद्ध भी धुरी राष्ट्र अब खुले रूप में भारत की स्वतंत्रता के पक्ष में थे। वह हमें अपनी क्षमता के अनुसार हर प्रकार की सहायता देने को तैयार थे।

मेरे विरुद्ध अपने शत्रुओं द्वारा किए जा रहे प्रचार से मैं अवगत हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरे देशवासी इस दुःप्रचार से भ्रमित नही होंगे। जब से मैंने भारत छोड़ा है, मैंने कभी कोई ऐसा कार्य नहीं किया जिससे मेरे देश के सम्मान व प्रतिष्ठा पर ज़रा भी आँच आ सकती हो? इसके विपरीत, मैंने जो कुछ किया वह अपने देश के लाभ के लिए, भारत की प्रतिष्ठा में वृद्धि के लिए एवं भारत की स्वतंत्रता के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए किया है।

दुनिया में एक दूसरे पर छींटाकशी करने, एक दूसरे की आलोचना करने वाले लोग कम नहीं हैं। जब कई गांधीवादियों ने नेताजी पर यह आरोप लगाया कि उन्होंने अपना सम्मान

एवं स्वाभिमान फॉसीवादी शक्तियों को बेच दिया है, तब नेता जी ने इस तरह के आरोप से क्षुब्ध होकर इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा था कि जिस व्यक्ति ने अपना जीवनपर्यंत राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं सम्मान के लिए संघर्ष किया हो, उसके प्रति समर्थन के लिए अनेक कष्ट सहे हों, वह संसार में अंतिम व्यक्ति होगा जो किसी विदेशी शक्ति को अपना सम्मान बेच दे। अपने देशवासियों का उच्चतम सम्मान पाकर मेरे पास शेष क्या था जो मुझे किसी विदेशी शक्ति से प्राप्त हो सकता था? विदेशी शक्तियों की कठपुतली वही बन सकता है जो अन्य शक्तियों के प्रभाव से अपनी प्रतिष्ठा का निर्माण करना चाहता हो।"[7]

नेताजी के संबंध में यह बात गंभीरतापूर्वक समझी जानी चाहिए थी कि भारत छोड़ने के साथ ही उन्होंने सब कुछ छोड़ने का ख़तरा लिया था। यहाँ तक कि अपने भविष्य के जीवन के प्रति वे आश्वस्त नहीं थे, उन्होंने अपने जीवन एवं राजनैतिक भविष्य को इसलिए दाँव पर लगाया था कि भारत को आज़ादी प्राप्त हो सके। ऐसे बलिदानी महापुरुष पर, उसके सम्मान पर अथवा उसकी सत्यनिष्ठा पर संदेह करना अपने आप में देशद्रोह है। हाँ, तत्कालीन परिस्थितियों के अध्ययन से यह बात भली-भाँति समझी जा सकती है कि देश छोड़कर जर्मनी, जापान जाने तथा वहाँ से युद्ध संचालित करने का जो विचारधाराएँ विरोध कर रही थीं, उनके विरोध में एक संभावना समान थी कि जापान की सहायता से ब्रिटिश हुकूमत को उखाड़ फेंकने की स्थिति में कहीं देश में जापानी साम्राज्य न अपना पैर पसार ले, यदि ऐसा हुआ तो अब तक किया गया स्वतंत्रता संघर्ष, छेड़े गए आंदोलनों का प्रतिफल न केवल व्यर्थ जाएगा, बल्कि कई सदियों के लिए देश पुनः जापानी साम्राज्य के अधीन गुलाम और हो जाएगा। यद्यपि यह संभावना भी निर्मूल थी, क्योंकि एक तो जापानी ऐसा व्यवहार नहीं करते तथा करते भी तो नेता जी अपने प्राणों की बाज़ी लगा देते। नेता जी ने तो जापान, जर्मनी, इटली जैसी विदेशी शक्तियों का सहयोग स्वतंत्रता प्राप्ति के हथियार के रूप में लेना चाहा था, ताकि इस प्रभावी शस्त्र के माध्यम से शत्रु पर अचूक बार कर शीघ्र स्वाधीनता प्राप्ति के लक्ष्य को हासिल किया जा सके।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि नेताजी सुभाषचंद बोस महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धावान् थे, लेकिन गांधीवाद से पूरी तरह असहमत। उन्हें गांधीवाद में आधुनिक समाज रचना का कोई आयाम नहीं नज़र आता था। लोकतंत्रीय प्रणाली के संबंध में उनका मानना था कि ग़रीबी, भुखमरी, महामारी, निरक्षरता, सामाजिक,धार्मिक, अंधविश्वास, सांप्रदायिकता एवं जातिवाद इत्यादि मुँह बाए खड़ी समस्याओं के समाधान में लोकतंत्र की दलगत खींचातानी, स्वार्थी राजनीति, हड़ताल, तालाबंदी इत्यादि बुराइयों आड़े आएँगी। साम्यवाद का आधार धर्म विरोध है, जबकि भारत में धर्म की जड़ें गहरी हैं। इसी प्रकार, फॉसीवाद नस्लीय श्रेष्ठता पर विश्वास करता है, जबकि भारत में रह रहे विविध धर्मावलंबियों एवं जातीय समूहों के मध्य समरसता आवश्यकता है। अतः उन्हें साम्यवाद एवं फॉसीवाद में ऐसी अद्भुत विशेषताएँ नज़र आती थीं जिन्हें भारत की उन्नति एवं आधुनिक समाज के निर्माण के लिए नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता था।

जैसे फांसीवाद में व्यक्ति की तुलना में राज्य को महत्त्व, इसी प्रकार हड़ताल, तोड़फोड़, जुलूस व दलगत राजनीति का अभाव, इसी प्रकार साम्यवाद में नियोजित अर्थव्यवस्था एवं उत्पत्ति के संसाधनों पर सामाजिक नियंत्रण साथ ही एक दलीय शासन। अतः नेताजी भारत में दोनों प्रणालियों की अच्छाईयों से युक्त इनकी मिली-जुली शासन व्यवस्था अर्थात टर्की के कमालपाशा जैसी व्यवस्था स्वतंत्रता प्राप्ति के 20 वर्ष तक लागू करने के पक्षधर थे, ताकि सशक्त ऊर्जावान भारत का निर्माण किया जा सके। भारत के आंतरिक क्षेत्र में वे जमींदारी प्रथा के अंत, भूमि के समान वितरण उत्पादन के संसाधनों पर समाज के नियंत्रण, नियोजित आर्थिक विकास, औद्योगिकरण तथा जातिविहीन राजनीतिक प्रणाली के उपासक थे। अपनी कल्पना की इस प्रणाली को साकार करने तथा देश को व्यावहारिक रूप से स्वतंत्रता दिलाने के लिए ही उन्होंने अपना जीवन एवं राजनीतिक भविष्य को दांव पर लगाकर ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रु सरकारों के सैनिक एवं आर्थिक सहयोग का स्वतंत्रता प्राप्ति के शस्त्र के रूप में प्रयोग करना चाहा था। वे देश में न तो जापान अथवा जर्मनी के साम्राज्यवाद का विस्तार करना चाहते थे, न ही अपने सम्मान एवं स्वाभिमान को बेचना चाहते थे। यह अलग बात है कि देश की स्वतंत्रता व सशक्त आधुनिक भारत के निर्माण हेतु उनकी भूखी आत्मा स्वतंत्रता की साक्षी नहीं बन सकी।

❑

संदर्भ

1. ख़ानम नगमा -- सुभाषचंद्र बोस -- राजनैतिक एवं दर्शनिक विचार पृ. 66, राधा पब्लिकेशंस् नई दिल्ली।
2. दिलीप कुमार राय -- नेताजी द मेन, भारतीय विद्या भवन, मुंबई
3. रामगोपाल -- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास -- भारत बुक सेंटर, लखनऊ
4. Japat S. Brigst (ED) Important Speeches and writings of Subhash Chandar Bose
5. Ibid
6. ख़ानम नगमा -- नेताजी सुभाषचंद्र बोस राजनैतिक एवं दर्शनिक विचार के पृ. 178, राधा पब्लिकेशंस्, नई दिल्ली।
7. आशा गुप्ता -- निस्संग क्रांति पथिक नेताजी

डॉ. साधना गुप्ता

गांधी दर्शन के आलोक में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 : भाषा, साहित्य और संस्कृति के विशेष संदर्भ में

'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् विद्या वह है जो मनोविकारों से मुक्त करे। यह मुक्ति केवल आध्यात्मिक नहीं, मोक्ष भी नहीं; वरन् यह मुक्ति है व्यक्ति की वर्तमान जीवन की सभी प्रकार की पराधीनता से, जो उसे साक्षर नहीं, शिक्षित बनाए। भर्तृहरि ने 'नीतिशतक' में कहा है -- 'साहित्यसंगीतकलाविहीनः साक्षात्पशुपुच्छविषाण्हीनः'। अतः शिक्षा वह शक्ति है जो व्यक्ति की अंतर्निहित शक्ति एवं क्षमताओं को पूर्णता के साथ उजागर कर उसके व्यक्तित्व को प्राणी मात्र के अस्तित्व से जोड़कर विस्तार प्रदान करती हैं। इसीलिए स्वामी विवेकानंद का आह्वान था -- ''मेरी समस्त भावी आशाएँ उन युवकों में केंद्रित है जो चरित्रवान् और बुद्धिमान् हैं।''[1] स्पष्ट ही है कि जीवन में विचार प्रमुख होते हैं, वे दूर तक यात्रा करते हैं। अतः आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो हमें उच्चतम आदर्श जीवन के संघर्ष हेतु तैयार करे। शारीरिक, मानसिक, धार्मिक, भावनात्मक, नैतिक, चारित्रिक, सामाजिक तथा व्यावहारिक विकास के संग वैचारिक स्वतंत्रता एवं राष्ट्रभक्ति के भाव से परिपूर्ण करे।

गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लक्ष्य

उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक है शिक्षा आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, आत्मज्ञान के साथ चेहरे पर आभा, शरीर में बल, मन में प्रचंड इच्छाशक्ति, बुद्धि में पांडित्य, जीवन में स्वावलंबन, हृदय में शिव, प्रताप, ध्रुव तथा प्रह्लाद की सामर्थ्य को झंकृत करे। जब हम बेहतर और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की बात करते हैं तो हमारा आशय होता है -- शिक्षा में वर्तमान प्रौद्योगिकी, विज्ञान, भाषा, साहित्य और समाज विज्ञान के साथ सांस्कृतिक जुड़ाव और आधुनिक प्रगतिशील सोच भी परिलक्षित हो, जो विद्यार्थियों में वर्तमान जीवन की चुनौतियों को कुशलतापूर्वक हल करने की दक्षता के संग आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के कुशलतम उपयोग को संभव बनाते हुए नवीन ज्ञान के सृजन हेतु तैयार करे।

चूँकि किसी भी कार्य की सफलता के लिए लक्ष्य निर्धारण अनिवार्य शर्त है। चित्राकार चित्र बनाने से पूर्व यह जानता है कि उसे क्या चित्रित करना है, परंतु आज हमारे शिक्षक को यह स्पष्ट नहीं है कि वह किस लक्ष्य को लेकर अध्यापन कार्य कर रहा है और न ही

हमारे विद्यार्थी को यह पता है कि वह किस लक्ष्य को लेकर अध्ययन कर रहा है? यदि यह कहा जाए कि सभी प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण करना है तो वेदांत के अनुसार, 'मनुष्य निर्माण' की शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। परंतु आज असीम पीड़ा के संग कहना पड़ रहा है कि हमारी शिक्षा अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबंधक, प्रशासक तो अवश्य तैयार कर रही है लेकिन वह इंसान तैयार नहीं कर पा रही है जो संवेदनशील मानव हो, सृजनशील हो, समाज के पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाने में सक्षम हो, अंतर्तम से प्रकृति को समझ सके, लगन व प्रयत्न से वस्तुओं और स्थितियों को परिपूर्णता तक पहुँचा सके और प्राणी मात्र की पीड़ा, दुःख, दर्द, अभाव, व्यथा और संताप को दूर कर सके।

परंतु आज तो वर्तमान शिक्षा का अर्थ केवल इतना भर है -- कुछ परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर नौकरी प्राप्त करना। नौकरी न मिले तो...? इस भय से दूर क्या यह शिक्षा बच्चों को स्वतंत्रता देती है कि वह वचन पालक राम, भरत, कृष्ण, पन्नाधाय, छत्रपति शिवाजी, रमन, टैगोर, कलाम, कल्पना, सुनीता जैसे चरित्र नायक बन सके? नहीं। क्योंकि, ऐसी प्रेरणा एवं संस्कार गुणवत्तापूर्ण शिक्षा से ही संभव है। वर्तमान समय की तराजू में हम किसी की तरह बनना चाहते हैं। अलग विशिष्ट पहचान नहीं बनाना चाहते तो 'मेधावी' कैसे बनेंगे? हमें सतत स्मरण रखना होगा जब दुनिया में कहीं विद्यालय की कल्पना भी नहीं थी तब इसी हमारे देश भारत वर्ष में विश्व स्तरीय नालंदा विश्वविद्यालय, तक्षशिला विश्वविद्यालय, विक्रमशिला विश्वविद्यालय थे, जिन्होंने संसार को शिक्षा और संस्कृति का पाठ पढ़ाया। जीवनशैली और सशक्त समाज की स्थापना का संदेश दिया। ऐसी पावन धरती की यह विसंगति क्यों? क्योंकि हम बुनियादी शिक्षा से दूर हो गए। इसका हल है गांधीजी बुनियादी शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में।

गांधी दर्शन में शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

गांधीजी ने भारतीय शिक्षा को 'द ब्यूटीफुल ट्री' कहा है। वे शिक्षा को सामाजिक उन्नति की आधारशिला के रूप में स्वीकार करते हैं। यह तभी संभव है जब शिक्षा मात्र मनुष्य से नहीं, वरन् समूचे समाज से जुड़ी हो, क्योंकि उसी से समाज को वह दिशा मिलती है जिस पर समाज की दशा निर्भर होगी। इस हेतु उन्होंने बुनियादी शिक्षा पर ज़ोर दिया। 1 सितंबर, 1921 के 'यंग इंडिया' में उन्होंने लिखा -- ''अन्य देशों के बारे में कुछ भी सही हो, कम से कम भारत में तो जहाँ 80 फीसदी आबादी खेती करने वाली है और दूसरी दस फीसदी उद्योगों में काम करने वाली है। शिक्षा को निरी साहित्यिक बना देने तथा लड़के और लड़कियों को उत्तर जीवन में हाथ के काम के लिए अयोग्य बना देना गुनाह है। क्योंकि हमारा देश अधिकांश समय रोज़ी कमाने में लगा रहता है इसलिए हमारे बच्चों को बचपन से ही इस प्रकार के परिश्रम का गौरव मिलना चाहिए।''[2]

बुनियादी शिक्षा

23 अक्टूबर, 1937 में गांधीजी ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में अपनी

बुनियादी शिक्षा की नई योजना प्रस्तुत की थी। सन् 1938 के हरिपुर के अधिवेशन में इस रिपोर्ट को स्वीकृति दी गई जो 'वर्धा शिक्षा योजना', 'बुनियादी शिक्षा' के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसके महत्त्वपूर्ण बिंदु इस प्रकार हैं --

प्रारंभिक शिक्षा

गांधीजी जिस शोषण विहीन समाज की स्थापना करना चाहते थे उसके लिए उन्होंने देश के बच्चों के लिए "3 H' शिक्षा की बात करते हुए हैंड, हेड और हार्ट से युक्त शिक्षा का समावेश किया था अर्थात् ऐसी शिक्षा जिसमें हाथ, मस्तिष्क और हृदय तीनों का सम्यक् सम्मिलन हो। जो व्यक्ति को स्वावलंबी बनाए, मस्तिष्क को चिंतन की ओर प्रवृत्त करे और हृदय को भावनाओं से परिपूर्ण। तभी शिक्षा देश को मज़बूती प्रदान करने में सक्षम होगी। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में, ''ज्ञान दूर, कुछ क्रिया भिन्न है, इच्छा क्यों पूरी हो मन की? अतः प्रारंभ से ही इन तीनों का सम्मिलन करने वाली शिक्षा होनी चाहिए।'' गांधीजी 7 वर्ष से 14 वर्ष की अवस्था तक सभी के लिए राष्ट्रव्यापी रूप में अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की बात करते हैं अर्थात् शिक्षा की अवधि 7 वर्ष की हो, जिसका स्तर मैट्रिक के समकक्ष माना जाए। पाठ्यक्रम बालक-बालिका के लिए समान हो।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर 1986 की शिक्षा नीति की कमियों को दूर करते हुए विद्यालय स्तर पर 5+3+3+4 शैक्षणिक संरचना का प्रस्ताव है जिसमें 3 से 18 वर्ष की अवस्था वाले बच्चे शामिल होंगे। प्रारंभिक 5 वर्ष की फाउंडेशन स्टेज (Foundational Stage) का अर्थ है बालक 3 वर्ष की उम्र से 3 वर्ष तक आँगनबाड़ी में रहे, जिसे प्री-प्राइमरी स्कूल कहा है, फिर शेष 2 वर्ष पहली व दूसरी कक्षा में विद्यालय में जिसे ग्रेड 1, 2 कहा गया है। तत्पश्चात् 3 वर्ष का प्रीपेट्रेरी स्टेज (Prepatratory stage) तीसरी से पाँचवीं कक्षा तक 3 वर्ष, फिर 3 वर्ष का मध्य (या उच्च प्राथमिक) चरण ग्रेड 6, 7, 8 अर्थात् 6 से 8 कक्षा के 3 वर्ष तथा 4 वर्ष का उच्च (या माध्यमिक) चरण, ग्रेड 9, 10, 11, 12, अर्थात् 9 से 12 तक के 4 वर्ष। इस तरह 3 से 18 वर्ष की आयु तक के बच्चे इसमें शामिल हैं। HHRO द्वारा बुनियादी साक्षरता और संख्यात्मक ज्ञान पर एक राष्ट्रीय मिशन (National Mission on foundational Literacy and Numeracy) की स्थापना का प्रस्ताव किया गया है जिसमें 2025 तक कक्षा-3 स्तर तक के बच्चों के लिए आधारभूत कौशल सुनिश्चित किया जाएगा। इसके उद्देश्यों के तहत 2030 तक 100ः जी.ई.पी. (Gross Eurolment Ratio) के साथ-साथ पूर्व विद्यालय से माध्यमिक स्तर तक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य रखा गया है। 8 वर्ष की अवस्था के बच्चों के लिए प्रारंभिक बचपन देखभाल और शिक्षा हेतु एक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और शैक्षणिक ढांचे का निर्माण एन.सी.आर.टी.ई. द्वारा किया जाएगा।

मातृभाषा में शिक्षा

गांधीजी ने साक्षरता को शिक्षा न मानते हुए शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा की

बात कही। उनके विचार में ''जैसे बालक की प्रथम गुरू माँ होती है उसी प्रकार उसके अधिगम का प्रथम माध्यम भी उसकी मातृभाषा होना चाहिए, क्योंकि माँ के दूध के साथ जो संस्कार और मीठे शब्द मिलते हैं उनके और पाठशाला के बीच जो मेल होना चाहिए वह विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा देने से टूट जाता है। इसके अतिरिक्त, विदेशी भाषा द्वारा शिक्षण से शिक्षित वर्ग व सामान्य जनता के मध्य अंतर आ गया है। हम जनसाधारण को नहीं पहचानते, वह हमें साहब समझते हैं... यदि यही स्थिति अधिक समय तक रही तो एक दिन लॉर्ड कर्जन का आरोप सही हो जाएगा -- शिक्षित वर्ग जनसाधारण का प्रतिनिधि नहीं है।''[3] अतः बालक स्कूल जाने पर मातृभाषा में ही शिक्षा ग्रहण करे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी मातृभाषा/स्थानीय भाषा/क्षेत्रीय भाषा में शिक्षा की बात करती है। न केवल स्कूल स्तर पर इसे प्राथमिकता देती है वरन् उच्च शिक्षा में भी छात्रों के लिए संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं का विकल्प प्रस्तुत करती है। छात्रा पर भाषा के चुनाव की कोई बाध्यता नहीं होगी। वह स्वतंत्र होगा अपनी भाषा के चुनाव के लिए क्योंकि पराई भाषा के लक्ष्य भी पराए होते हैं। उसमें संप्रेषण भी पूर्ण संभव नही होता। मातृभाषा में शिक्षा सरल होती है अतः अनिवार्य रूप से सभी पाठ्यक्रम हिंदी में ही होंगे। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भाषा की परिपक्वता, शब्द भंडार के अनुसार उसका प्रयोग करते हुए तकनीकी शब्द अनुपलब्ध हों तो परस्पर विश्वविद्यालय स्तर पर सहयोग कर उपलब्ध करवाने की बात करती है। क्योंकि हमें विद्यार्थियों को केवल नॉलेज या स्किल ही नहीं देना है वरन् वेल्यूज भी देनी है, जिससे वे समाज के लिए संवेदनशील हो समाज को परेशानियों से मुक्त करवाने हेतु समाधान ख़ोज सके।

पाठ्यवस्तु

गांधीजी चाहते थे पाठ्यवस्तु ऐसी हो जो बालक के शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्य पूर्ण विकास करने में सक्षम हो, अतः चाहते थे सभी प्रकार की शिक्षा का माध्यम स्थानीय उत्पादकता और उद्योग हो, शिक्षा विद्यार्थियों के घर, जीवन, समाज, ग्रामीण उद्योगों, हस्तशिल्पियों और व्यवसायों से जुड़ी हुई होनी चाहिए, जो बड़े होने पर विद्यार्थी को रोज़गार उपलब्ध करवाए, स्वावलंबी बनाए। अतः संपूर्ण शिक्षा का संबंध आधारभूत शिक्षा से हो। शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जानी चाहिए कि शिक्षार्थी उसके सामाजिक और वैज्ञानिक महत्त्व को समझ सके। शिक्षार्थी को शिल्प चुनने का अधिकार हो जिससे अपने द्वारा निर्मित वस्तु का उपयोग वे स्वयं कर सके, साथ ही उसे बेच कर कुछ आय भी प्राप्त कर उस आय को विद्यालय पर व्यय कर सके। छठी-सातवीं में बालिकाएँ शिल्प के स्थान पर गृह विज्ञान ले सकती हैं। इस प्रकार शिक्षा में शारीरिक श्रम को और रुचि को महत्त्व दिया जाए जिससे मनपसंद शिल्प की शिक्षा पाकर कुशल शिल्पी के रूप में वह स्वावलंबी बन सके। इस प्रकार गांधीजी की अवधारणा स्वायत्तशासी विद्यालयों की थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 भी विद्यालय स्तर पर बागवानी, खेलकूद, योग, नृत्य, मार्शल आर्ट इत्यादि को स्थानीय उपलब्धता के अनुसार प्रदान करने के प्रयासों की बात करती है। अनुभव और प्रयोग में न आने वाली पाठ्य सामग्री को हटाने की बात करती है। विद्यार्थी को प्रतिभा, ज्ञान व इच्छाओं के अनुरूप शिक्षा प्राप्ति के अवसर प्रदान करते हुए व्यावसायिक पाठ्यक्रमों को सामान्य पाठ्यक्रम के समान मानते हुए कला, विज्ञान, व्यावसायिक तथा शैक्षणिक विषयों व पाठ्यक्रम व पाठ्येतर गतिविधियों के मध्य के अंतर को न्यून करते हुए कक्षा छः से ही शैक्षणिक पाठ्यक्रम में व्यावसायिक शिक्षा को शामिल करने की बात करती है जिसमें इंटरशिप (Internship) की व्यवस्था भी रहेगी। इस हेतु राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (N C E R T) द्वारा स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यक्रम रूपरेखा तैयार की जाएगी।

समग्र विकास को लक्ष्य बनाकर दसवीं व बारहवीं की कक्षाओं की परीक्षाओं में बदलाव करते हुए सेमेस्टर या बहुवैकल्पिक जैसे सुधारों को अपनाया जाएगा। छात्रों की प्रगति के मूल्यांकन हेतु मानक निर्धारक निकाय के रूप में 'परख' (PARAKH) नामक एक नए राष्ट्रीय आकलन केंद्र (National Assessment centre) की स्थापना की जाएगी। साथ ही प्राप्ति मूल्यांकन का भविष्य में निर्णय लेने में सहायता हेतु कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence & A I) आधारित सॉफ्टवेयर का प्रयोग किया जाएगा।

उच्च शिक्षा में विज्ञान के विद्यार्थी को कला की शिक्षा प्राप्त करने का और कला के विद्यार्थी को विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करती है। इस हेतु स्नातक पाठ्यक्रम में मल्टीपल एंट्री एंड एक्जिट व्यवस्था को अपनाया जाएगा जिसमें छात्र तीन या चार वर्ष के स्नातक पाठ्यक्रम में कई स्तरों पर पाठ्यक्रम को छोड़ सकेंगे या एक साथ पूरा कर सकेंगे। उसी के अनुरूप प्रमाण-पत्र या डिग्री प्रदान की जाएगी। एक वर्ष के बाद प्रमाण पत्र, 2 वर्ष के बाद एडवांस डिप्लोमा, 3 वर्ष के बाद स्नातक की डिग्री और 4 वर्ष के बाद शोध के साथ स्नातक। विभिन्न उच्च शिक्षण संस्थाओं से प्राप्त अंकों या क्रेडिट को डिजिटल रूप में सुरक्षित रखने के लिए एक एकेडमिक बैंक ऑफ़ क्रेडिट दिया जाएगा ताकि अलग-अलग संस्थानों में छात्रों के प्रदर्शन के आधार पर उन्हें डिग्री प्रदान की जा सके। विकलांग बच्चों हेतु क्रॉस विकलांगता जैसे पाठ्यक्रम शामिल किए जाएँगे। भारतीय पारंपरिक ज्ञान संबंधी प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए जनजातीय एवं स्वदेशी ज्ञान को पाठ्यक्रम में सटीक एवं वैज्ञानिक तरह से शामिल किया जाएगा।

चूँकि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का मूल मंतव्य शिक्षा को आत्मनिर्भरता से जोड़ने का है, विद्यार्थी को सभी क्षेत्रों में मौलिकता की ओर प्रेरित करना है। अतः यह समाज में अपने क्षेत्र में कुशलता प्राप्त सभी कलाकारों को, प्रतिभाओं को, जो उपाधि रहित है परंतु अपने हुनर में विशिष्ट है, को विद्यार्थियों से जोड़ने का प्रयास करती है जिससे विद्यार्थी लाभान्वित हो सके। विस्तृत फलक पर देखा जाए तो यह शिक्षा नीति वैश्विक प्रतिस्पर्धा की बात करती है, -- विश्व में जो श्रेष्ठ है, नया-पुराना उसे शिक्षण से जोड़ने की बात करती है जिससे शिक्षक विद्यार्थी

के लिए रोल मॉडल होने के स्थान पर दोस्त बने जिससे विद्यार्थी शिक्षक के पढ़ाए हुए पर प्रश्न कर सके।

ऐसे क्षेत्र जहाँ बड़ी संख्या में आर्थिक, सामाजिक या जातिगत बाधाओं का सामना करने वाले शिक्षार्थी होंगे उन्हें 'आकांक्षी' ज़िले नाम से संबोधित कर विशेष शैक्षणिक क्षेत्र के रूप में नामित किया जाएगा। केंद्र सभी लड़कियों और ट्रांसजेंडर छात्रों को समान गुणवत्ता प्रदान करने की दिशा में एक जेंडर इंक्लूजन फंड (Gender Inciusion Fund) की स्थापना करने की बात करती है।

शिक्षा का उद्देश्य

गांधीजी शिक्षा के उद्देश्य को दो भागों में बाँटते हैं -- तात्कालिक और सर्वोच्च। तत्कालिक उद्देश्य नियमित शिक्षा के माध्यम से शीघ्र प्राप्त किया जाने वाला है, जैसे; जीवकोपार्जन के संग व्यवहार में सांस्कृतिक अनुशीलन, चारित्रिक, नैतिक, मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक विकास। सर्वोच्च उद्देश्य के रूप में शिक्षार्थी के आत्म विकास के लिए आध्यात्मिक स्वतंत्रता द्वारा आत्मानुभूति करना, अर्थात् शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति के शरीर, मन और आत्मा में स्थित रहने वाले चारित्रिक व नैतिक गुणों का चहुँमुखी विकास कर सके। उसे समस्त बंधनों से मुक्ति मिले।

इस तरह गांधीजी की शिक्षा व्यवस्था न केवल व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकताओं को पूर्ण करने की दिशा में सकारात्मक पहल है, वरन् हर हाथ को कार्य और कार्य में दक्षता के माध्यम से स्थानीय कलाओं को प्रोत्साहन देती है। कला वह संजीवनी है जो संस्कृति को जीवन दान देती है एवं संस्कृति को बढ़ावा देती है। व्यक्ति-व्यक्ति के मध्य भेद को समाप्त कर सभी को स्वरोज़गार के माध्यम से स्वाभिमानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार देती है। उसमें मानवीय गुणों का, संवेदनाओं का विकास करती है। सभी कार्यों को समान दृष्टि से देखने की समझ विकसित करती है। शरीर को पुष्ट और मज़बूत बनाती है। एक संग सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक, नैतिक सभी मानवीय मूल्यों से जोड़कर प्रत्येक क्षेत्र में सही का चुनाव करते हुए जीवन संघर्षों से लोहा लेने, जीवन जीने का संदेश देती है। सर्वोदय का लक्ष्य लेकर चलने वाली इस शिक्षा के व्यावहारिक समाधान के रूप में देश में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 स्वीकार की गई है, जिसका उद्देश्य भी शिक्षार्थी का 360-degree विकास करना है। अतः इस के क्रियान्वयन से प्रत्येक शिक्षार्थी को अपनी बास्केट स्वयं सजाने का मौक़ा मिलेगा। ज्ञान के साथ समझ को विकसित करने वाली इस शिक्षा नीति के व्यावहारिक अनुशीलन से विद्यार्थी की सृजनात्मक क्षमता में विकास से विचारधारा में भी परिवर्तन होगा और वह अपनी समस्या का निदान ढूँढने में सक्षम हो सकेगा। सभी क्षेत्रों में आत्मनिर्भर होगा। इससे शोध को एक ऐसी दिशा मिलेगी जो राष्ट्र को विश्व-गुरू के रूप में देख सके।

चुनौतियाँ और समाधान

गांधी के शिक्षा दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के क्रियान्वयन व सफलता के मार्ग में अनेक चुनौतियाँ हैं, जैसे -- केवल बुनियादी ढाँचे से ही शिक्षा अच्छी नहीं होती, वैसे विद्यार्थी भी चाहिए। प्रश्न है क्या आज शिक्षक विद्यार्थी को उस स्तर तक ले जाने में सक्षम है जहाँ वह नए सिरे से सोच सके, बुनियादी शिक्षा ग्रहण कर सके? पाठ्यक्रम के अतिरिक्त स्वयं के विकास के संपूर्ण पहलुओं को ध्यान में रखकर विद्यार्थी बीच में शिक्षा छोड़ पुनः शिक्षा प्रारंभ कर सके? नहीं है। हमें उसे इसके लिए तैयार करना होगा। आर्थिक रूप से कमज़ोर परिवार के विद्यार्थी के लिए आर्थिक पहलू भी बाधक होगा। हमारे संसाधनों की कमी भी विचारणीय बिंदु है। सही मायने में देखा जाए तो यह नीति भारत को विश्व-गुरू बनाने से पहले शिक्षक को गुरु बनाना चाहती है जिसे लक्ष्य को ध्यान में रखकर पाठ्य-वस्तु का पुनः निर्माण करना होगा। हिंदी में पाठ्य सामग्री का अनुवाद करना होगा -- जिसके लिए प्रयत्न भागीरथ हो या गिलहरी जितना, सभी को यथाशक्ति करना होगा। जब एकजुट प्रयासों से हम कोविड का उपचार निकालने में सक्षम हुए हैं तो इसमें भी अवश्य होंगे, बस हमें इसके लिए वातावरण बनाना होगा, ज़मीन तैयार करनी होगी। कोविड आया तो हम उससे संबंधित शब्दावली से भी परिचित हो गए। पहले कहाँ जानते थे इन शब्दों को। ठीक ऐसे ही हिंदी शब्दों के सतत प्रयोग से परिचय आत्मीय हो जाएगा, शब्द अपने-से लगने लगेंगे। आज हमनें ज्ञान का पर्याय ही अंग्रेज़ी को मान लिया है और हिंदी बोलने वाले को अज्ञानी, इस हीन मानसिकता से भी बाहर आने की आवश्यकता है। विद्यार्थी को मौलिकता की ओर अग्रसर करना होगा जिसके लिए आवश्यक है कौतुहल और जिज्ञासा को उकसा कर प्रश्न करने की प्रवृत्ति को महत्त्व दिया जाए। विद्यार्थी के पास प्रश्न होंगे तभी वह लक्ष्य का संधान कर पाएगा। यह शिक्षा नीति प्रवेश व निकास के नियमों का सरलीकरण करती है। वैश्विक प्रतिस्पर्धा की बात करती है अतः विश्व से संयुक्त रहने के लिए, अपडेट रहने के लिए जागरूक और सचेत करती है। शिक्षक के आत्म-सम्मान की रक्षा करती है। उसे वैचारिक स्वतंत्रता प्रदान करती है परंतु इसके लिए शिक्षक को अपनी उन्नति की भी चिंता करनी होगी -- गुणवत्तापूर्ण शोध करना होगा। स्वयं के उत्कर्ष व प्रतिष्ठा की और क़दम बढ़ाने होंगे, तब विश्वविद्यालय का विकास स्वयं हो जाएगा।

सार रूप में, केवल इतना कि आज तक शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षा की व्यवस्था हमारी नहीं रही। अतः उद्देश्य भी वह नहीं रहा जो हम चाहते हैं। आज शिक्षा ने हमें ऐसी मानसिकता से जकड़ दिया है जो सर्जनात्मकता और आत्मनिर्भरता से कोसों दूर है। आयातित ज्ञान का अनुकरण स्वतंत्र चिंतन व क्रियान्वयन के लिए बाधक ही सिद्ध हुआ। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इन चुनौतियों को स्वीकार कर गांधीजी की बुनियादी शिक्षा की अवधारणा को कार्य रूप देते हुए स्वशासित निकाय के रूप में ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करती है जो सभी के लिए समान है परंतु इसके लिए आवश्यक है जीवन का एक ध्येय हो और परिणाम की चिंता किए

बिना उसकी पूर्ति के लिए प्रयासरत् रहना। तभी लक्ष्य प्राप्ति संभव होगी। हमारे यहाँ सांस्कृतिक चेतना, शिक्षा एवं शैक्षणिक वातावरण की कमी नहीं है। वास्तव में हम अपने सोने के सिक्के का वास्तविक मूल्य नहीं आँक पा रहे हैं। परिणाम हमारी प्रतिभाएँ पलायन कर रही हैं। हमें रोकना होगा उन्हें। हमें शब्दों से पहले दुनिया को पढ़ना होगा -- जैसे आदमी भूखा क्यों है? उत्तर है खाने को कुछ न होना। भोजन क्यों नहीं है? उत्तर है -- रोज़गार नहीं है। मुझे रोज़गार क्यों नहीं मिल रहा है? प्रश्नों की इस कड़ी के मध्य वे कारण उद्घाटित होते चले जाते हैं जो उस परिवेश के लिए उत्तरदायी हैं और यही शिक्षा की यात्रा है जिसे पार करते हुए शब्दों की शिक्षा की भावभूमि बनती है। ऐसे में शिक्षक का उचित मार्गदर्शन खिलती कलियों को प्रफुल्ल प्रसून बनाने में मददगार होता है, अतः उसे बालक की आत्मा का शिल्पी बनना होगा और सृजन रूपी हथियार से बालक की ऐसी मूर्ति गढ़नी होगी जो बेमिसाल हो -- यही गांधी दर्शन और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का आत्मकथ्य है, सार है और है लक्ष्य भी।

❑

संदर्भ

1. शिविरा, पत्रिका, सितंबर 2017, पृ. 19
2. भाषा, नवंबर-दिसंबर 2018, पृ. 42
3. भाषा, नवंबर-दिसंबर 2018, पृ. 42

सन्तोष खन्ना को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान से विधि भूषण पुरस्कार

प्रतिष्ठित साहित्यकार और विधि भारती परिषद् की संस्थापक महासचिव एवं 'महिला विधि भारती' त्रैमासिक पत्रिका की संस्थापक-संपादक श्रीमती सन्तोष खन्ना को उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान ने वर्ष 2020 का विधि भूषण पुरस्कार प्रदान किया है। यह पुरस्कार उन्हें लगभग तीन दशकों से विधि और न्याय के क्षेत्र में हिंदी के प्रचार-प्रसार और लोगों में उनके अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में जागृति का उन्मेष करने संबंधी उनके अवदान के लिए प्रदान किया गया है। यह उन्हें लखनऊ में एक भव्य समारोह में उत्तर प्रदेश विधान सभा के माननीय अध्यक्ष आदरणीय श्री हृदय नारायण दीक्षित के कर कमलों द्वारा प्रदान किया गया जिसमें उन्हें ढाई लाख रुपए की धनराशि, एक प्रतीक चिन्ह और अंग वस्त्र भेंट किया गया।

श्रीमती सन्तोष खन्ना को 'विधि भूषण पुरस्कार' के लिए बहुत-बहुत बधाई।

डॉ. शकुंतला कालरा

वर्तमान समय में हिंदी भाषा की उपादेयता

हिंदी हमारे राष्ट्र की आत्मा है। चेकोस्लोविकिया के प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. आंदोलन स्मेकल के अनुसार -- 'किसी देश की आत्मा को समझने के लिए उसकी भाषा को समझना बहुत आवश्यक है।'

हिंदी भारत की वह मात्रभाषा है जिसका प्रयोग संपर्क भाषा के तौर पर किया जा सकता है क्योंकि यह अधिकतर लोगों द्वारा बोली तथा समझी जाती है, इसलिए इसकी सबसे बड़ी उपादेयता है। आप किसी भी प्रांत में जाएँ, वहाँ किसी धार्मिक, सांस्कृतिक स्थल पर जाएँ, वहाँ हिंदी ही संपर्क भाषा के रूप में प्रयुक्तेय होती है। चाहे आप किसी ऐतिहासिक स्थल अथवा पर्यटन-स्थल पर जाएँ वहाँ गाइड, ऑटोरिक्शा चालक अथवा बस चालक, दुकानदार, पंडित आदि सभी को इसका काम चलाऊ ज्ञान अवश्य होगा। भले ही वह उनका हिंदी-प्रेम न हो, व्यापारिक मजबूरी हो, लेकिन यह सच है कि परस्पर संवाद के लिए वे हिंदी सीखते भी हैं, और बोलते भी हैं। व्यापार मेले जहाँ-जहाँ लगते हैं और विभिन्न प्रांतों के लोग आते हैं, परस्पर संवाद के लिए हिंदी ही उनका माध्यम बनती है। बंगाल, आसाम, गुज़रात, उड़ीसा, पंजाब, केरल, चेन्नई, महाराष्ट्र आदि से आए लोग परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं। यह बहुत बड़ी सच्चाई है कि अंग्रेज़ी के माध्यम से अथवा किसी एक भारतीय भाषा के माध्यम से देश की बहु संख्यक जनता से न तो संपर्क स्थापित किया जा सकता है और न राष्ट्र की प्रगति की जा सकती है।

हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा है जो प्रांतीय भाषाओं को साथ लेकर और साथ मिलकर आगे बढ़ती रही है। यह संस्कृत से निकली है और हमारी अन्य प्रांतीय भाषाऐं भी संस्कृत से निकली है। हिंदी का अधिकतम शब्द भंडार तत्सम शब्दों का है और अन्य प्रांतीय भाषाओं में भी संस्कृत शब्दों की विपुलता है इसलिए इसे सीखना कठिन नहीं। नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने कहा था कि 'अगर आज हिंदी सारे देश की भाषा मान ली गई, तो वह इसलिए नहीं कि वह किसी प्रांत विशेष की भाषा है, बल्कि इसलिए कि वह अपनी सरलता, व्यापकता तथा क्षमता के कारण सारे देश की भाषा है।' दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह पूरे देश की भाषा है न कि केवल उत्तर भारत की क्षेत्रीय भाषा। उसका विकास उत्तर भारत और दक्षिण भारत के दीर्घकालीन राजनीतिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक संबंधों के आधार पर पूरे देश की आम

जनता के बीच बोली जाने वाली भाषा के रूप में हुआ था।

वर्तमान समय में हिंदी भाषा की सर्वाधिक उपादेयता इस रूप में है कि यह पूर्ण असंप्रदायिक भाषा है। उसका संबंध किसी धर्म, जाति या संप्रदाय से नहीं। वर्तमान समय में सभी धर्मों, जातियों एवं संप्रदायों को जोड़ने वाले पुल के रूप में इसकी अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका देखी जा सकती है।

हिंदी भाषा की सबसे बड़ी उपादेयता यह है कि वह पूरे देश को सांस्कृतिक एकता में बाँधती है। सांस्कृतिक दृष्टि से भारत एक है, उसकी आत्मा एक है। हिंदी हमारी पहचान है, उससे हमारा सांस्कृतिक जुड़ाव है। उससे बच्चों को अलग करने का अर्थ है, उन्हें अपनी संस्कृति से अलग करना। उन्हें रामायण, गीता से अलग करना। हमारे पौराणिक ग्रंथ, वेद, उपनिषद् जो सांस्कृतिक धरोहर हैं उनसे अपरिचित रखना। सूर, तुलसी, कबीर, मीरा, नानक की वाणी से उन्हे वंचित रखना। हिंदी हमें हिंदुस्तान को सांस्कृतिक संकट से बचाने वाला सबसे बड़ा शस्त्र है।

वर्तमान समय में हिंदी की उपादेयता का इससे बड़ा प्रमाण क्या हो सकता है कि संसार में इस समय लगभग 170 विश्वविद्यालयों में हिंदी का शिक्षण चल रहा है। हिंदी हमारे ही देश में उपादेय नहीं, वरन् विश्व भी वर्तमान समय में इसकी उपादेयता को स्वीकार कर चुका है। इसका प्रमाण है विश्व के लगभग 145 विश्वविद्यालयों में हिंदी का अध्ययन-अध्यापन। निश्चय ही यह हिंदी की लोकप्रियता और उपादेयता का पुख़्ता प्रमाण है। अकेले जापान में ही 850 महाविद्यालयों में हिंदी के अध्ययन की सुविधा है। इंग्लेंड के कैम्ब्रिज, आक्सफोर्ड, यार्क एवं लंदन विश्वविद्यालयों में, इटली के पाँच विश्वविद्यालयों में, रूस के मानविकी और मास्को विश्वविद्यालयों में, कोरिया के हांकुक एवं बुशान विश्वविद्यालयों सहित अमरीका के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी का शिक्षण चल रहा है। साथ ही शोधकार्य भी हो रहा है। मॉरिशस के विश्वविद्यालयों में पीएच.डी. तक का शोधकार्य हिंदी में हो रहा है। इंग्लैंड में अंग्रेज़ी के बाद हिंदी का स्थान है।

इसी प्रकार, विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या भी कम नहीं है। विश्व के 132 देशों में रहने वाले सवा करोड़ भारतीय हिंदी बोलते हैं। डॉ. जयंतीलाल नौटियाल के अनुसार -- 'विश्व में हिंदी बोलने वालों की संख्या एक अरब से भी अधिक है।' अतः विश्व में हिंदी प्रथम स्थान पर है, जबकि प्रो. महावीर शरण जैन के अनुसार -- 'हिंदी दूसरे स्थान पर है। इस समय विश्व में चीनी भाषा के समझने-बोलने वालों की संख्या प्रथम स्थान पर है। हिंदी दूसरे स्थान पर अपना वर्चस्व बना चुकी है। अंग्रेंजी तीसरे स्थान पर है।' आज लोगों में इस भ्राँत धारणा को निरंतर बढ़ावा दिया जा रहा है कि बिना अंग्रेज़ी भाषा के विकास और प्रगति करना संभव नहीं है। ऐसे लोगों के लिए इन देशों का उदाहरण उनकी समझ को खोलने के लिए पर्याप्त होगा जिन्होंने अपनी भाषा में चतुर्मुखी विकास किया। जापान, रूस, जर्मनी, फ्रांस, चीन तथा इज़राइल जैसे देश का उदाहरण सबके सामने है।

सूचना प्रौद्योगिकी की, ई-मेल और कंप्यूटरीकरण के इस युग में हिंदी की उपयोगिता की संभावना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। आज का युग मीडिया का युग माना जाता है। मीडिया के वैश्विक महत्त्व को स्वीकार करते हुए वर्तमान समय में हिंदी भाषा की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। विज्ञापन के जितने भी माध्यम हैं उसमें जिस हिंदी भाषा का प्रयोग हो रहा है वह मन और कानों को लुभाती है। विज्ञापनों में हिंदी का प्रभुत्व है। बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ पूरे विश्व में अपना उत्पाद बेच रही हैं। भारत उनके लिए सबसे बड़ा बाज़ार है, जिसमें वे अपने विज्ञापन जारी करते हैं, जिनकी भाषा हिंदी होती है क्योंकि हिंदी जन-जन की भाषा है। इसे हर व्यक्ति समझता है। इस प्रकार विज्ञापनों पर हिंदी का प्रभुत्व है, जिसने हिंदी को उपादेय भाषा बनाया है।

यह ठीक है कि हमारी हिंदी भारतवर्ष के सर्वाधिक भू-भाग में बोली और समझी जाने वाली भाषा है, लेकिन दुःख की बात यह है कि आज भी देश के कुछ हिस्से ऐसे हैं, जहाँ हिंदी का प्रयोग नहीं होता, बल्कि पढ़े-लिखे लोग संपर्क भाषा के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग अधिक करते हैं। दक्षिण में यह स्थिति विशेष रूप से देखी जा सकती है। तमिलनाडु में हिंदी विरोध करने वालों ने वहाँ की भाषा को वह सम्मान नहीं दिया है, जो उसे मिलना चाहिए। अंग्रेज़ी अभी भी वहाँ की राज्यभाषा के रूप में प्रयुक्त हो रही है। सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित हुआ, जिसका तमिलनाडु में जमकर विरोध हुआ। राजभाषा अधिनियम में संशोधन करके 1967 में राजभाषा के रूप में अंग्रेज़ी को अनिश्चित काल के लिए मंजूरी दे दी गई। तब प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा -- 'जब तक सभी राष्ट्र न चाहें तब तक शासकीय कार्यों में अंग्रेज़ी का उपयोग होता रहेगा।' यही निर्णय राष्ट्रभाषा हिंदी के लिए अभिशाप बन गया। इस विषय में मोरारजी देसाई के विचार दृष्टव्य हैं -- 'जब तक इस देश का राजकाज अपनी भाषा हिंदी में नहीं चलेगा तब तक यह नहीं कह सकते कि देश में स्वराज है।'

हिंदी को सर्वमान्य नहीं किया गया, यह एक विडंबना ही है। शासन और प्रशासन को पूरे मन और इच्छाशक्ति से प्रयास करना चाहिए। इसके लिए ऐसा दृढ़ संकल्प चाहिए जैसे तुर्क में कमालपाशा ने लिया। तुर्की को राष्ट्रभाषा बनाने के निर्णय लेने के लिए उन्होंने कुछ विशेष विद्वानों की सभा बुलाई और पूछा -- 'तुर्की कितने दिनों में चलने लगेगी। विद्वानों का उत्तर था, 15 वर्षों में। कमालपाशा बोले -- समझ लो 15 वर्ष पूरे हो गए। कल से तुर्की भाषा में काम होना चाहिए।' यह हिम्मत चाहिए परंतु किसी ने ऐसी दृढ़ इच्छा नहीं दिखाई।

ऐसी दृढ़ता का एक दूसरे उदाहरण स्वरूप मैं अपने ही देश के ऐसे कर्मयोगी भारतीय संसद में हिंदी के प्रथम वक़्ता श्री नारायण प्रसाद सिंह को उद्धृत करना चाहूँगी, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभाई। नारायण बाबू का हिंदी-प्रेम तो एक इतिहास बन गया, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ उनसे प्रेरित होती रहेंगी। वे स्पष्ट वक़्ता थे। बात उन दिनों की है जब अंग्रेज़ों की असेंबली में कार्यवाही अंग्रेज़ी भाषा में होती थी। किसी भारतीय भाषा में बोलना न केवल निषिद्ध था वरन् संगीन अपराध था। सरदार बल्लभभाई पटेल के अग्रज विठ्ठलभाई

पटेल असेंबली के अध्यक्ष थे। नारायण प्रसाद सिंह ने पब्लिक सेफ़्टी बिल पर हिंदी में बोलने की अनुमति माँगी। अध्यक्ष बिल पर बोलने की इजाज़त के लिए तैयार थे, किंतु हिंदी में बोलने पर सहमत नहीं हुए। अध्यक्ष ने उन्हें अपने कमरे में बुलाया और हिंदी में बोलने के लिए समझाने लगे। इस घटना का रोचक प्रसंग यह था कि विठ्ठल भाई अंग्रेज़ी में बोल रहे थे और नारायण सिंह जी हिंदी में उत्तर दे रहे थे। झुंझलाकर पटेल जी ने कहा -- 'आप हिंदी में बोलने के लिए क्यों हठ कर रहे हैं?'

'क्योंकि मुझे अंग्रेज़ी नहीं आती।'

'तो आप अंग्रेज़ी में कही मेरी बातों को समझ कैसे रहे हैं?'

'जैसे आप मेरी बात समझ रहे हैं?'

आवेश में आकर पटेल ने कहा -- 'आप लड़ने आए हैं या काम करने?'

'आया तो काम करने हूँ, ज़रूरत पड़ी तो लड़ने में पीछे नहीं रहूँगा?'

इस उत्तर से प्रभावित होकर अध्यक्ष महोदय ने उन्हें हिंदी में बोलने की अनुमति दे दी। इसी के साथ नारायण प्रसाद जी को भारतीय संसदीय इतिहास में हिंदी का प्रथम वक़्ता होने का गौरव प्राप्त हुआ।

उपरोक्त सभी कारणों से हिंदी सर्वाधिक उपादेय भाषा के रूप में स्थापित हो चुकी है। हिंदी विविधरूपा है -- साहित्यिक हिंदी, प्रशासनिक हिंदी, संचार माध्यमों की हिंदी, विज्ञापन की हिंदी, वाणिज्यिक हिंदी, शैक्षिक हिंदी, विज्ञान व तकनीकी हिंदी, स्थानीय हिंदी आदि। हर रूप में इसकी उपादेयता स्वयंसिद्ध है। कहते हैं न जादू वह जो सिर चढ़कर बोले। भारत के आम चुनावों में हम सबने देखा कि आम जनता तक पहुँचने के लिए हिंदी की कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। श्री नरेंद्र मोदी जी ने देश के कोने-कोने में जनता से सीधा संवाद हिंदी में किया और उन्हें आशातीत सफलता मिली। इससे ज़्यादा हिंदी की उपादेयता को सिद्ध करने का प्रमाण कौन-सा हो सकता है?

हिंदी का वर्तमान परिदृश्य आशा से भरा है। मैं अपनी बात को साहित्य-अमृत के संयुक्त संपादक हेमंत कुकरेती के शब्दों में कहना चाहूँगी, ''लोगों की बोली उनकी आवाज़ ही भाषा बनती है और सरकार को उसी का प्रयोग करना पड़ता है। अगर सरकारें ही भाषा तय करतीं तो सदियों पहले फारसी पूरे देश की भाषा बन गई होती या अंग्रेज़ी राज में अंग्रेज़ी पूरे भारत में छा गई होती, परंतु ऐसा नहीं हुआ। हिंदी प्रगति पथ पर अग्रसर है, वह राजभाषा बनकर ही रहेगी।'' दक्षिण भारतीय भी अब हिंदी के महत्त्व को पहचानते हैं और वहाँ निरंतर हिंदी का प्रयोग बढ़ रहा है।

❑

स्वतंत्रता सेनानी नीरा आर्य की मार्मिक गाथा

कहा जाता है कि भारत को चरख़े से आज़ादी मिली? नीरा आर्य की कहानी। स्वाधीनता संग्राम की मार्मिक गाथा। नीरा आर्य का विवाह ब्रिटिश भारत में सी.आई.डी. इंस्पेक्टर श्रीकांत जयरंजन दास के साथ हुआ था। नीरा ने नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जान बचाने के लिए अंग्रेज़ी सेना में अपने अफसर पति श्रीकांत जयरंजन दास की हत्या कर दी थी। नीरा ने आत्मकथा भी लिखी है। 5 मार्च, 1902 को तत्कालीन संयुक्त प्रांत के खेकड़ा नगर में एक प्रतिष्ठित व्यापारी सेठ छज्जूमल के घर जन्मी नीरा आर्य आज़ाद हिंद फ़ौज में रानी झांसी रेजिमेंट की सिपाही थीं, जिन पर अंग्रेज़ी सरकार ने गुप्तचर होने का आरोप भी लगाया था।

इन्हें नीरा नागिनी के नाम से भी जाना जाता है। इनके भाई बसंत कुमार भी आज़ाद हिंद फ़ौज में थे। इनके पिता छज्जूमल अपने समय के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे, जिनका व्यापार देश-भर में फैला हुआ था। ख़ासकर कलकत्ता इनके पिताजी के व्यापार का मुख्य केंद्र था। इसलिए इनकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता में ही हुई।

नीरा नागिन और इनके भाई बसंत कुमार के जीवन पर कई लोक गायकों ने काव्य संग्रह एवं भजन भी लिखे। 1998 में इनका निधन हैदराबाद में हुआ।

आज़ाद हिंद फ़ौज के समर्पण के बाद जब लाल क़िले में मुकदमा चला तो सभी बंदी सैनिकों को छोड़ दिया गया, लेकिन इन्हें पति की हत्या के आरोप में काले पानी की सज़ा हुई थी, जहाँ इन्हें घोर यातनाएँ दी गई।

आज़ादी के बाद इन्होंने फूल बेच कर जीवनयापन किया, लेकिन कोई भी सरकारी सहायता या पेंशन स्वीकार नहीं की।

इनकी आत्मकथा का एक हृदयद्रावक अंश प्रस्तुत है --

''मैं जब कलकत्ता जेल से अंडमान पहुँची, तो हमारे रहने का स्थान वे ही कोठरियाँ थीं, जिनमें अन्य महिला राजनैतिक अपराधी रही थी अथवा रहती थी। हमें रात के 10 बजे कोठरियों में बंद कर दिया गया और चटाई, कंबल आदि का नाम भी नहीं सुनाई पड़ा। मन में चिंता होती थी कि इस गहरे समुद्र में अज्ञात द्वीप में रहते स्वतंत्रता कैसे मिलेगी, जहाँ अभी तो ओढ़ने बिछाने का ध्यान छोड़ने की आवश्यकता आ पड़ी है?

जैसे-तैसे ज़मीन पर ही लोट लगाई और नींद भी आ गई। लगभग 12 बजे एक पहरेदार

दो कंबल लेकर आया और बिना बोले-चाले ही ऊपर फेंक कर चला गया। कंबलों का गिरना और नींद का टूटना भी एक साथ ही हुआ। बुरा तो लगा, परंतु कंबलों को पाकर संतोष भी आ ही गया। अब केवल वही एक लोहे के बंधन का कष्ट और रह-रह कर भारत माता से जुदा होने का ध्यान साथ में था।

सूर्य निकलते ही मुझको खिचड़ी मिली और लुहार भी आ गया। हाथ की सांकल काटते समय थोड़ा-सा चमड़ा भी कट गया, परंतु पैरों में से आड़ी बेड़ी काटते समय, केवल दो-तीन बार हथौड़ी से पैरों की हड्डी को जाँचा कि कितनी पुष्ट है। मैंने एक बार दुःखी होकर कहा, ''क्या अंधा है, जो पैर में मारता है?'' ''पैर क्या हम तो दिल में भी मार देंगे, क्या कर लोगी?''

उसने मुझे कहा था।''बंधन में हूँ तुम्हारे कर भी क्या सकती हूँ...'' फिर मैंने उनके ऊपर थूक दिया था, ''औरतों की इज़्ज़त करना सीखो?''

जेलर भी साथ थे, तो उसने कड़क आवाज़ में कहा, ''तुम्हें छोड़ दिया जाएगा,यदि तुम बता दोगी कि तुम्हारे नेताजी सुभाष कहाँ हैं?''

''वे तो हवाई दुर्घटना में चल बसे,'' मैंने जवाब दिया, ''सारी दुनिया जानती है।''

''नेताजी ज़िंदा हैं... झूठ बोलती हो तुम कि वे हवाई दुर्घटना में मर गए?'' जेलर ने कहा।

''हाँ नेताजी ज़िंदा हैं।''

''तो कहाँ हैं...?''

''मेरे दिल में ज़िंदा हैं वे।''

जैसे ही मैंने कहा तो जेलर को गुस्सा आ गया था और बोले, ''तो तुम्हारे दिल से हम नेताजी को निकाल देंगे।'' और फिर उन्होंने मेरे आँचल पर ही हाथ डाल दिया और मेरी आँगी को फाड़ते हुए फिर लुहार की ओर संकेत किया...लुहार ने एक बड़ा-सा जंबूड़ औज़ार जैसा फुलवारी में इधर-उधर बढ़ी हुई पत्तियाँ काटने के काम आता है, उस ब्रेस्ट रिपर को उठा लिया और मेरे दाएँ स्तन को उसमें दबाकर काटने चला था... लेकिन उसमें धार नहीं थी, ठूँठा था और उरोजों (स्तनों) को दबाकर असहनीय पीड़ा देते हुए दूसरी तरफ़ से जेलर ने मेरी गर्दन पकड़ते हुए कहा, ''अगर फिर ज़बान लड़ाई तो तुम्हारे ये दोनों गुब्बारे छाती से अलग कर दिए जाएँगे...''

उसने फिर चिमटानुमा हथियार मेरी नाक पर मारते हुए कहा, ''शुक्र मानो महारानी विक्टोरिया का कि इसे आग से नहीं तपाया, आग से तपाया होता तो तुम्हारे दोनों स्तन पूरी तरह उखड़ जाते।''

(अनाम)

❑

सन्तोष खन्ना

इंदिरा गांधी : भारत रत्न से सम्मानित भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री

स्वतंत्र भारत में अब तक कई अग्रणी नेताओं को प्रधानमंत्री का पद सुशोभित करने का शुभ अवसर मिला है। देश ने जवाहर लाल नेहरू से लेकर अब वर्तमान में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी को इस पद पर कार्य करते हुए देखा है। अब तक देश के जितने भी प्रधानमंत्री बने हैं लगभग सभी ने अपने नेतृत्व से देश को एक सुदृढ़ आधार देने का प्रयास किया है और सभी को भारत के इतिहास में उनकी उपलब्धियों के लिए जाना जाएगा किंतु इन सब में इंदिरा गांधी को जिस उल्लेखनीय उपलब्धि के लिए इतिहास और देश हमेशा याद रखेगा वह है विश्व के क्षितिज पर एक नए राष्ट्र का निर्माण अर्थात् एक स्वतंत्र देश बांग्लादेश की स्थापना। इतिहास साक्षी है कि इस महान् कार्य को जिस धैर्यवान् निपुणता और प्रवीणता से उन्होंने इसे संपन्न किया वह स्वयं में बेजोड़ है क्योंकि इसके लिए उन्हें पाकिस्तान और विश्व की महाशक्ति अमेरिका और यहाँ तक कि चीन के विरोध का सामना करना पड़ा था। इंदिरा गांधी ने इन सब चुनौतियों का सामना जिस अदम्य साहस, शौर्य और सूझबूझ से किया, वह वस्तुतः वरेण्य और प्रशंसनीय है। इसी उपलब्धि के लिए वर्ष 1972 में देश ने उन्हें देश की सर्वोच्च उपाधि 'भारत रत्न' से सम्मानित किया था। वह देश की एकमात्र ऐसी प्रथम महिला थी जिन्होंने लंबे अरसे तक लगभग 16 वर्षों तक प्रधानमंत्री के पद को सुशोभित किया ही, साथ ही 'भारत रत्न' प्राप्त करने वाली प्रथम महिला बनी और यह भी कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि स्वतंत्र भारत में वे देश के लिए प्राणों का उत्सर्ग करने वाली भी प्रथम महिला प्रधानमंत्री थीं।

वैसे तो अनेक उपलब्धियाँ इंदिरा गांधी के नाम दर्ज हैं परंतु जिस उपलब्धि के लिए उन्हें 'भारत रत्न' की उपाधि से सम्मानित किया गया वह स्वयं में एक असाधारण, अद्वितीय और दुर्लभ उपलब्धि थी। बांग्लादेश की स्वतंत्रता के लिए जिस प्रकार का संघर्ष उन्होंने किया इस प्रकार की उपलब्धि तो समूचे विश्व में किसी भी नेता के नाम दर्ज दिखाई नहीं देती है। इस उपलब्धि को इतिहास में हमेशा स्वर्ण अक्षरों में रेखांकित किया जाता रहेगा।

आज विश्व के क्षितिज पर भारत का एक सक्षम रुतबा है। उस समय ऐसी स्थिति नहीं थी। कुछ वर्ष पहले ही भारत चीन के हाथों बुरी तरह परास्त हुआ था। यद्यपि 1965 में लाल बहादुर शास्त्री के नेतृत्व में भारत-पाक युद्ध में भारत की शानदार विजय हुई थी परंतु भारत

उस समय आर्थिक दृष्टि से उतना सशक्त तो नहीं था और उससे पहले इंदिरा गांधी को कांग्रेस के संगठनात्मक स्तर पर भी बराबर संघर्ष का सामना करना पड़ा था। जब पाकिस्तान सेना के अत्याचारों से तंग आकर बांग्लादेश बनने के लिए वहाँ की जनता संघर्ष कर रही थी तो लाखों लोगों को अपना देश छोड़कर भारत आना पड़ा था। इन लोगों की देखभाल करना और उन्हें हर तरह की राहत पहुँचाने का काम भी तो भारत सरकार के ज़िम्मे था जिसे इंदिरा गांधी की सरकार ने बख़ूबी निभाया था और बांग्लादेश के स्वतंत्र होने पर इन लोगों की स्वदेश वापसी सुनिश्चित की गई थी। यही नहीं, 1971 के भारत पर पाकिस्तान ने आक्रमण किया था तो भारत की सेना ने बांग्लादेश में भी और भारतीय सीमाओं पर अपने अभूतपूर्व पराक्रम और शौर्य का प्रदर्शन किया था। पाकिस्तान को हारना पड़ा था और बांग्लादेश के मोर्चे पर तो वहाँ लगभग एक लाख पाकिस्तानी सेना ने हमारे सैनिक अधिकारियों के समक्ष आत्मसमर्पण किया था। बाद में भारत सरकार ने उन्हें पाकिस्तान को लौटा दिया था पर जब तक यह एक लाख पाक सैनिक भारत में रहे अर्थात् उन्हें वापस भेजने से पहले काफ़ी समय तक उनका रख-रखाव भी करना पड़ा था।

संक्षिप्त पृष्ठभूमि : इंदिरा गांधी भारत की ऐसी पहली महिला थी जिनको भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश का जनवरी 1966 में प्रधानमंत्री बनाया गया था। उससे पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू के निधन के बाद लाल बहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री बने थे। 1962 में चीनी आक्रमण के बाद उस युद्ध में भारत की हार ने नेहरू जी को शायद कहीं भीतर से तोड़ कर रख दिया था क्योंकि 'हिंदी चीनी भाई भाई' के नारों के बीच उन्होंने कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि भारत का मित्र कहलाने वाला चीन इस तरह भारत और नेहरू जी की पीठ में छुरा घोंप देगा। इस युद्ध में भारत के एक बहुत बड़े क्षेत्र पर चीन ने क़ब्ज़ा कर लिया था। नेहरू हमेशा विश्व शांति के पक्षधर थे और चीन द्वारा दिए गए सदमे से उबर नहीं पाए और भारत की पराजय के बाद एक डेढ़ वर्ष के भीतर ही उन्होंने अपने प्यारे भारत से विदा ले ली।

लाल बहादुर शास्त्री छोटे से कद के एक साधारण इंसान थे किंतु बहुत ही सज्जन व्यक्ति थे। उन्हें प्रधानमंत्री बने कोई साल सवा साल हुआ था जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। शास्त्री जी के विराट् व्यक्तित्व में भारतीय सेना ने पाकिस्तान को नाकों चने चबा चबा दिए थे। भारतीय सेना ने पाकिस्तान में घुसकर कुछ क्षेत्रोंपर अधिकार भी कर लिया था। उसी युद्ध के बाद 11 जनवरी, 1966 को प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का ताशकंद में दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। वहाँ वे भारत-पाक युद्ध के बाद पाकिस्तान के साथ शांति समझौते के लिए गए हुए थे। इस समझौते के लिए अविभाजित रूस मध्यस्थता कर रहा था। 1965 के भारत-पाक युद्ध का उस समझौते के तहत युद्धविराम हो गया।

प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्ति : शास्त्री जी के निधन के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री बनाया गया। इससे पहले वह शास्त्री जी की कैबिनेट में सूचना और प्रसारण मंत्री के पद पर कार्यरत् थी। उस समय मैंने उनका चित्र तक नहीं देखा था क्योंकि तब मीडिया

के नाम पर कुछ समाचार-पत्र और रेडियो ही था। इसलिए उस समय नेताओं के चित्र तक आज की तरह आम नहीं थे। उस समय टी. वी. भारत में अभी आकार ही ले रहा था। मैं उस समय ऑल इंडिया रेडियो के रिसर्च डिपार्टमेंट में टाइपिस्ट के पद पर कार्यरत थी। यही रिसर्च डिपार्टमेंट भारत में टीवी के आगमन के लिए दिन-रात क्रियाशील था और उसके प्रयास से भारत में सबसे पहले सैटेलाइट टी.वी. का अवतार हुआ था।

इंदिरा गांधी को 11 जनवरी, 1966 को प्रधानमंत्री बनाया गया था। 1966 में मैंने लोक सभा में सहायक के पद की एक प्रतियोगी परीक्षा पास कर ली थी और एक साक्षात्कार के बाद मेरा वहाँ चयन हो गया अतः मेरी भी 1966 में लोक सभा सचिवालय में सहायक के पद पर नियुक्त हो गई थी। उस समय लोक सभा सचिवालय में इक्का-दुक्का ही महिला कार्यरत् थीं और सहायक के रूप में लोकसभा ज्वॉइन करने वाली मैं पहली महिला थी। उस समय सहायक का पद भी बड़ा समझा जाता था।

मैंने पहली बार इंदिरा जी को संसद भवन के परिसर में ही देखा था। संसद भवन के 8 प्रमुख द्वार हैं जिनमें से एक केंद्रीय गेट नंबर एक है जिससे सभी लोग, चाहे वे मंत्री हों या संतरी, सांसद हों या अधिकारी सभी आते जाते हैं। ''यह वहीं संसद का मुख्य द्वार हैं जिससे श्री नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री बनने के बाद जब पहली बार संसद भवन आए तो उन्होंने इसी गेट नंबर एक पर माथा टेक कर संसद का वैसे ही अभिवादन किया था जैसे किसी मंदिर में इष्ट देव के चरणों में माथा टेकते हैं। संसद भवन में एक स्पीकर गेट है जहाँ से लोक सभा के अध्यक्ष महोदय आते जाते हैं। उसके पश्चात् एक प्रधानमंत्री गेट है। सामान्यता देश के प्रधानमंत्री उसी द्वार से ही संसद में आते जाते हैं।

आज अगर आप 21वीं सदी के इस तीसरे दशक में संसद भवन को देखेंगे तो अहसास होगा कि सुरक्षा के लिए संसद भवन लगभग एक क़िले में तब्दील हो चुका है। उसके चारों तरफ़ सुरक्षा व्यवस्था इतनी चौक चौबंद है कि कोई भी पास के बिना उसके अंदर नहीं जा सकता। किंतु वर्ष 1966 में स्थिति बिल्कुल भिन्न थी। आज की परिस्थितियों को देखते हुए आज यह यक़ीन करना मुश्किल है कि उस समय संसद भवन के अंदर की सड़कों से डीटीसी की बसें गुज़रा करती थीं। मेरी बस भी संसद मार्ग से आ कर सीधे संसद भवन के अंदर से होते हुए केंद्रीय सचिवालय के अपने अंतिम स्टॉप पर रुकती थीं। मुझे अभी भी याद है कि मैं भी बस से संसद भवन पहुँचती थी तो जब बस संसद भवन के अंदर प्रधानमंत्री के गेट के सामने से गुज़रती तो मैं प्रायः बस ड्राइवर से बस की गति धीमी करने को कहती तो अगर वह बस की गति धीमी कर देता तो वहीं प्रधानमंत्री गेट के सामने बस से कूद जाती और प्रधानमंत्री गेट से होते हुए लिफ़्ट लेकर दूसरी मंज़िल पर प्रश्न अनुभाग के अपने कक्ष में पहुँच जाती। अगर बस प्रधानमंत्री गेट पर न रुकती तो मुझे केंद्रीय सचिवालय के स्टाप पर उतरना पड़ता, उस स्थिति में मैं संसद भवन के गेट नंबर आठ से अंदर आती और लिफ्ट नं एक लेकर अपने कक्ष में पहुँचती। इसमें चलना थोड़ा ज़्यादा पड़ता था जबकि मेरे

अनुभाग से नीचे आने पर प्रधानमंत्री गेट एकदम समीप पड़ता था इसलिए प्रधानमंत्री गेट से प्रायः आना जाना ही होता था।

इंदिरा गांधी से सामना : एक दिन संसद भवन से बाहर आने के लिए मैं प्रधानमंत्री गेट की सीढ़ियाँ उतर रही थी कि अचानक क्या देखती हूँ कि प्रधानमंत्री गेट पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की कार आकर गेट के सामने रुकी। मुझे आज भी उस गाड़ी का नंबर याद है। उस गाड़ी का नंबर 2800 था जो गाड़ी की नंबर प्लेट पर बड़े-बड़े अंकों में अंकित था। वे गाड़ी से उतरीं और संसद भवन के अंदर आने के लिए उन्होंने गेट की ओर देखा और ऊपर देखते हुए उन्होंने नमस्ते करने की मुद्रा में हाथ जोड़ दिए। मुझे लगा कि ज़रूर मेरे पीछे वहाँ कोई मंत्री या कोई अन्य उनका जानकार होगा जिसे वे हाथ जोड़कर अभिवादन कर रही होंगी। प्रधानमंत्री को सामने पा कर मैं वहाँ जड़वत्-सी ही खड़ी रही शायद यह सोच कर कि जो भी वहाँ कोई मेरे पीछे हो, वे पहले चला जाए। पर वहाँ तो कोई नहीं था। उन्होंने औपचारिकता वश मुझे ही नमस्ते करने के लिए हाथ जोड़े थे। मुझे लगा कि वे मुझे थोड़े ही नमस्ते करेंगी, वे तो प्रधानमंत्री थी, भला मुझे क्यों ऐसे नमस्ते करेंगी। बाद में मुझे अपनी ग़लती का अहसास हुआ तो स्वयं पर एक बहुत ग्लानि हुई कि मैंने उनकी नमस्ते का जवाब क्यों नहीं दिया। शायद उन दिनों इतनी समझ ही नहीं थी मुझे तो स्वयं ही उनका अभिवादन करना चाहिए था। पर मैं तो इंदिरा जी को सामने पाकर अभिभूत हो गई थी। आज भी चित्र लिखित-सा वह दृश्य बार-बार मेरे मानस पटल पर हू-ब-हू टंगा है और ग्लानि का भाव भी वैसा ही पैदा हो जाता है। शर्म के मारे मैंने उस घटना को कभी किसी के साथ सांझा नहीं किया। बल्कि यहाँ पहली बार आप सबसे सांझा कर रही हूँ। इस घटना से मैं इंदिरा जी की फैन बन चुकी थी। उन दिनों मैं कांग्रेसी थी और परिवार वालों के मना करने के बावजूद मेरा वोट कांग्रेस को ही जाता था।

कांग्रेस संगठन ने इंदिरा गांधी को प्रधानमंत्री तो बना दिया था यह सोच कर कि वे उस 'गूंगी गुड़िया' को आसानी से साध लेंगे परंतु इंदिरा जी ने अपनी नीतियों से शीघ्र ही उनका यह भ्रम तोड़ दिया जिससे वे उसे बाहर का रास्ता दिख़ाने के लिए छटपटानने लगे थे परंतु इंदिरा गांधी ने राजनीति के इस रणक्षेत्र में कभी हार नहीं मानी और अपनी अंतिम साँस तक डटी रही।

इंदिरा गांधी की मुख्य चुनौतियाँ : इंदिरा गांधी जी को प्रधानमंत्री बने अभी मुश्किल से कोई आठ-दस महीने ही हुए थे कि 7 नवंबर, 1966 को भारतीय जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के नेतृत्व में असंख्य साधुओं की भीड़ ने संसद भवन को घेर लिया। आंदोलनकारियों की यह भीड़ देश में गौ-हत्या पर प्रतिबंध लगाने के लिए सरकार से क़ानून बनाने की मांग कर रही थी। करनाल के तत्कालीन जनसंघ संसद सदस्य स्वामी रामेश्वरानंद के कथित तौर पर भड़काने से भीड़ संसद के लौह द्वार पर चढ़ कर अंदर घुसने का प्रयास करने लगी। स्थिति नियंत्रण से बाहर होते देख पुलिस को गोली चलाने पड़ी जिससे भीड़ तितर

बितर हो गई परंतु उस गोलीबारी में सात साधु काल कवलित हो गए। इस घटना को मैंने संसद भवन की छत पर बनी दीवार में बने झरोखों से देखा था और उस समय भय के कारण मैं तो काफ़ी घबरा गई थी। तब भी मुझे यहीं लगा था कि पुलिस को मजबूरन गोलीबारी करनी पड़ी थी। पुलिस भी क्या करती, साधुओं के हाथों में बड़े बड़े त्रिशूल थे और भड़काने से वे काफ़ी उत्तेजित हो गए थे। सुनने में यह भी आया था कि उन्होंने एक पुलिस वाले की हत्या कर दी थी।

इंदिरा गांधी ने अपनी राजनीतिक सूझबूझ का परिचय देते हुए तत्कालीन गृह मंत्री गुलजारीलाल नंदा को बर्ख़ास्त कर दिया क्योंकि यह समझा जा रहा था कि उनकी सहानुभूति आंदोलनकारियों के साथ थी। इसके अलावा, उन्होंने तभी सेवानिवृत्त हुए भारत के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति ए.के. सरकार की अध्यक्षता में गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति का गठन कर दिया जिसमें सभी पक्षों के सदस्यों को शामिल किया गया था। यह समिति वर्षों तक अस्तित्व में रही परंतु इस समिति ने कभी अपना प्रतिवेदन नहीं दिया। बाद में जब वर्ष 1977 में मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने इस समिति को भंग कर दिया।

1971 के आम चुनाव और इंदिरा गांधी : 1971 के आम चुनाव में मुक़ाबला वस्तुतः इंदिरा गांधी और शेष विपक्ष के बीच था। उस समय तत्कालीन कांग्रेस के अध्यक्ष निजलिंगप्पा ने कामराज, एस.के. पाटिल, अतुल्य घोष, मोरारजी देसाई जैसे कांग्रेस के दिग्गज नेताओं के साथ मिलकर इंदिरा गांधी को कांग्रेस से बाहर कर दिया था और कांग्रेस (ओ) नाम से एक अलग पार्टी बना ली थी। उस समय यह सब दिग्गज नेता इंदिरा गांधी की नीतियों से नाख़ुश थे। इंदिरा गांधी ने उस समय न केवल राजों और महाराजों की प्रिवी पर्स संबंधी सुविधाएँ ख़त्म कर दी थीं बल्कि देश के चौदह निजी बैंकों का राष्ट्रीयकरण भी कर दिया था जबकि कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं का झुकाव अमीरों की तरफ़ अधिक था; आम जनता की तरफ़ कम था। जुलाई, 1969 में देश के चौदह प्राइवेट बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया था क्योंकि इंदिरा गांधी जी को लगा कि बैंकों की सुविधाएँ आम जन तक नहीं पहुँच रही हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में तो बैंकिंग सुविधाओं का नाम निशान नहीं था। इस क़दम ने उन्हें 'ग़रीबों की हितैषी' वाली छवि दे दी थी। नयनतारा सहगल ने अपनी पुस्तक 'ए रोड टू पावर' में लिखा है; पार्टी को दो फाड़ करने के लिए इंदिरा ने जिस तरह की आक्रामकता दिखाई वह कांग्रेस के लिए एक नई बात थी। उनका नाटकीय अंदाज और साहस उल्लेखनीय था। एक और फ़ैसला जो उल्लेखनीय है वह था 500 से ऊपर छोटी बड़ी रियासतों के राजाओं के प्रिवी पर्स संबंधी सुविधाओं को समाप्त करना क्योंकि उनका विचार था कि जिस देश में इतनी ग़रीबी हो वहाँ राजाओं को मिलने वाली सुविधाएँ तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती। उस आम चुनाव में इंदिरा गांधी वाली कांग्रेस की शानदार जीत हुई थी। कांग्रेस को लोक-सभा में 520 सीटों में से 352 सीटें मिली थीं जिसने उनकी शक्ति और आत्म विश्वास काफ़ी बढ़ गया क्योंकि अब पार्टी के अंदरूनी

संघर्ष से उन्हें मुक्ति मिल गई थी।

बंगलादेश का उदय : देश के सामने अब भी कई चुनौतियाँ थी। पिछले दो वर्षों में मॉनसून में बारिश की कमी के कारण सूखे की स्थिति बनी हुई थी। हरित क्रांति की शुरुआत तो हो गई थी परंतु अभी भी देश में खाद्यान्न का पर्याप्त उत्पादन नहीं हो रहा था और देश पी.एल. 480 के अंतर्गत अमरीका से गेहूँ आयात करता था। लोकसभा चुनाव के बाद प्रधानमंत्री पद की शपथ ग्रहण किए अभी एक सप्ताह ही बीता था कि उन्हें अपने देश की समस्याओं के साथ ही उस समय पड़ोसी देश पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) की एक ऐसी विकट समस्या का सामना करना पड़ा जिसके कारण विश्व के मानचित्र में एक नए देश बांग्लादेश का उदय हुआ और जिसकी स्थापना का श्रेय इंदिरा गांधी के नेतृत्व में भारत को जाता है। इस नए देश के उदय से विश्व में एक नए इतिहास की रचना तो हुई, उसके साथ भारत के इतिहास में इस प्रकार के मोड़ आए जो इस घटनाक्रम के सीधे परिणाम थे।

इसकी पृष्ठभूमि को समझने के लिए हमें 20वीं शती के सातवें आठवें दशक के इतिहास के पन्ने पलटने होंगे। 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली पर साथ ही देश हिंदुस्तान और पाकिस्तान के नाम से दो टुकड़ों में बाँट दिया गया। चूँकि यह विभाजन धर्म विशेष के आधार पर हुआ था इसलिए मुस्लिम -- बहुल क्षेत्रों से एक नया देश पाकिस्तान बना। पाकिस्तान का क्षेत्र एक पश्चिम पाकिस्तान और एक पूर्वी पाकिस्तान था। पूर्वी पाकिस्तान भारत के पश्चिमी बंगाल से लगा हुआ क्षेत्र था। पाकिस्तान के तत्कालीन राष्ट्रपति याह्या खाँ ने 1971 में पाकिस्तान में पहली बार आम चुनाव करवाने की घोषणा कि तो विपक्ष के तत्कालीन नेता मुजीबुर्रहमान की अवामी लीग पाकिस्तान की कुल 313 सीटों में से 169 सीट जीत कर सबसे बड़ी पार्टी बन कर उभरी। उधर पश्चिमी पाकिस्तान में पाकिस्तान पीपल्स पार्टी 81 सीटें जीती लेकिन अवामी लीग को पाकिस्तान में एक भी सीट नहीं मिली। पाकिस्तान के संविधान के अनुसार बहुमत मिलने के कारण मुजीबुर्रहमान को पाकिस्तान का प्रधानमंत्री बनाया जाना चाहिए था किंतु पश्चिमी पाकिस्तान वाला हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान के नेता मुजीबुर्रहमान को प्रधानमंत्री नहीं बनाना चाहते थे। इसके लिए दोनों यूनिटों में बातचीत का लंबा दौर चला परंतु अवामी लीग को सत्ता हस्तांतरण का फ़ैसला नहीं हो सका। अतः मुजीबुर्रहमान ने 26 मार्च, 1971 को पूर्वी पाकिस्तान को बांग्लादेश के रूप में एक स्वतंत्र राज्य की धोषणा कर दी। पाकिस्तान ने मुजीबुर्रहमान को गिरफ़्तार कर पश्चिमी पाकिस्तान की एक जेल में डाल दिया और पाकिस्तान की सेना ने बांग्लादेश पर नियंत्रण के लिए सर्च लाइट आपरेशन आरंभ किया। सर्च लाइट आपरेशन, 25 मार्च, 1971 की रात को आरंभ किया गया। रात को आरंभ किए गए इस आपरेशन में सेना ने व्यवस्थित ढंग से पूर्वी बंगाल के राष्ट्रीय बंगाली नागरिकों, छात्रों, बुद्धिजीवियों, धार्मिक अल्पसंख्यकों और सैनिक कर्मिकों को मौत के घाट उतारना आरंभ कर दिया। पाकिस्तानी सेना के बंगालियों पर अत्याचारों का सबसे अधिक प्रभावित हुआ भारत क्योंकि पाकिस्तान सेना के इस नर संहार के कारण लाखों बंगालियों ने सीमा पार कर भारत में शरण लेना शुरू कर दिया।

उस समय पाकिस्तान के सैनिक प्रशासन ने पाकिस्तान की एक पत्रकार एंथनी मेस्करहेंस को पूर्व बंगाल की स्थिति के बारे में पाकिस्तान के पक्ष में रिपोर्ट लिखने के लिए भेजा था। मेस्करहेंस वहाँ से रिपोर्ट ले वह यू.के. भाग गई और वह रिपोर्ट 13 जून, 1971 के संडे टाइम्स में प्रकाशित हुई जिसमें उन्होंने बताया कि पाकिस्तानी सेना कैसे वहाँ के लोगों को बड़े पैमाने पर मौत के घाट उतार रही है। इस रिपोर्ट के आधार पर बी.बी.सी ने लिखा कि इसमें ज़रा-सा भी संदेह नहीं है कि मेस्करहेंस की रिपोर्ट से वहाँ की स्थिति की सच्चाई के बारे में पता चला और पश्चिम में सभी लोगों की राय अब पाकिस्तान के ख़िलाफ़ बन रही है।

भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने इसी रिपोर्ट का संज्ञान लेते हुए लिखा कि एंथनी मेस्करहेंस की इस रिपोर्ट के बाद से ही भारत ने वहाँ सैनिक हस्तक्षेप करने का फ़ैसला किया। इंदिरा गांधी ने बांग्लादेश में मुक्ति बाहिनी के रूप में संघर्ष कर रहे वहाँ के लोगों को व्यापक आधार पर राजनयिक और राजनीतिक समर्थन देना आरंभ किया। भारत में लाखों शरणार्थियों का आना लगा हुआ था। कुल मिलाकर एक करोड़ शरणार्थियों ने उस समय भारत में शरण ली थी। इसे देखते हुए प्रधान मंत्री 25 अप्रैल, 1971 को ही इस नतीज़े पर पहुँच चुकी थी कि लाखों शरणार्थियों को अपने देश में आने देने के स्थान पर अच्छा होगा कि पाकिस्तान के विरुद्ध युद्ध किया जाए। इंदिरा गांधी की सरकार के कड़े फ़ैसलों की वजह से बांग्लादेश में मुक्ति बाहिनी की हर तरह से सहायता की गई और साथ ही इंदिरा गांधी ने विश्व के देशों को बांग्लादेश की स्थिति से अवगत कराने और उनका समर्थन लेने के लिए उन्होंने अनेक देशों की यात्रा की। सभी देशों के समर्थन का प्रयास करना इसलिए भी आवश्यक था क्योंकि उस समय विश्व की महाशक्ति कहे जाने वाला देश अमरीका पाकिस्तान की हर तरह से मदद कर रहा था। यहीं नहीं, अन्य पश्चिमी देश और इस्लामी देश भी चुप थे और चीन का झुकाव भी पाकिस्तान की तरफ़ था और गुपचुप पाकिस्तान को हथियारों की सप्लाई कर रहा था। ऐसी स्थिति में वहाँ सैनिक हस्तक्षेप करना ख़तरों से खाली नहीं था। इंदिरा गांधी ने ऐसे में अपनी कूटनीतिक सूझबूझ का परिचय देते हुए उस समय यू.एस.एस.आर (रूस) से 20-वर्षीय मैत्री संधि की जिसका अर्थ यह था कि यदि अमरीका सैनिक हस्तक्षेप करेगा तो रूस अमरीका के विरुद्ध भारत की मदद करेगा।

भारत-पाक युद्ध : यद्यपि अमरीका ने भारत को डराने धमकाने और अत्यधिक दवाब बनाने के लिए बंगाल की खाड़ी में अपना सेंवन्थ फ्लीट बेड़ा भेज दिया जो परमाणु अस्त्रों से लेस था किंतु यह इंदिरा गांधी को अपने लक्ष्य से विचलित नहीं कर पाया। अन्य तरीक़ों से भी चीन और कुछ देश पाकिस्तान को अस्त्र-शस्त्र दे कर उसकी मदद कर रहे थे। इन सब परिस्थितियों के होते हुए भी इंदिरा गांधी ने अद्‌भुत साहस का परिचय देते हुए भारत की ओर से बांग्लादेश बनाने के लिए सैनिक हस्तक्षेप किया। इसके लिए इंदिरा गांधी ने भारतीय सेना के तीनों सेना प्रमुखों को पूरी स्वतंत्रता दे दी कि वह हर तरह से इस समस्या का सफल समाधान कर युद्ध को शीघ्र समाप्त कर दें। 3 दिसंबर, 1971 को पाकिस्तान ने भारत पर

हवाई हमला कर दिया जिससे दोनों देशों में युद्ध शुरू हो गया और दोनों देशों ने माना कि दोनों देशों में युद्ध की स्थिति बनी हुई है।

15 दिसंबर, 1971 को भारत की प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने यूएस के राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन को भेजे पत्र में लिखा था कि बांग्लादेश में मार्च 1971 के घटनाक्रम को निष्पक्ष रूप से देख कर कोई भी व्यक्ति इस नतीज़े पर पहुँचे बिना नहीं रह सकता कि वहाँ विद्रोह कर रहे करोड़ों लोग यह देख रहे हैं कि उन्हें न तो जीवन का अधिकार है और न ही किसी अन्य स्वतंत्रता का है। वहाँ सहज जीवन का तो प्रश्न ही नहीं उठता है।

पाकिस्तान के साथ दोनों मोर्चों पर युद्ध चल रहा था। पाकिस्तान ने 3 दिसंबर, 1971 को शाम सात बजे के क़रीब हमारे कई शहरों पर हमले आरंभ किए। मुझे अभी भी याद है जब संसद से छुट्टी के बाद बस से घर के लिए लौट रही थी और हमारी बस घंटाघर पहुँची ही थी। दिल्ली में एकाएक ब्लैक आउट लग गया क्योंकि पाकिस्तान ने अन्य शहरों के साथ दिल्ली पर हवाई हमला कर दिया था। उन दिनों मैं उत्तर दिल्ली के शक्ति नगर में रहती थी, किसी तरह बस ने हमें शक्ति नगर पहुँचाया। उस युद्ध के दौरान हवाई हमला भारत के कई शहरों पर बमबारी हुई थी और जान-माल का नुक़सान भी हुआ था। दोनों मोर्चों पर भारतीय सेना ने अद्भुत और अदम्य साहस और शौर्य का परिचय दिया था और हमारी सेना के अद्भुत पराक्रम के परिणामस्वरूप जब 17 दिसंबर, 1971 की युद्ध की समाप्ति हुई तो तब तक पाकिस्तान सेना के 93 हज़ार से ऊपर सैनिकों ने भारतीय सेना के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया और उन्हें बंदी बना लिया गया था। इस प्रकार प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के सशक्त नेतृत्व और भारतीय सेना के दोनों मोर्चों पर अद्भुत प्रदर्शन से बांग्लादेश स्वतंत्र हो गया।

भारत रत्न सम्मान और बांग्लादेश स्वाधीनता सम्मान : युद्ध समाप्ति और बांग्लादेश के उद्भव के बाद यह स्वाभाविक ही था कि इंदिरा गांधी जी के इस दौरान किए गए सफल प्रयासों की सभी भूरि-भूरि प्रशंसा करते।

जब पाकिस्तान की सेना के आत्मसमर्पण के बाद इंदिरा गांधी संसद पधारीं तो सब ने उनका खड़े होकर करतल ध्वनि से अभिवादन किया था तथा सभी ने मेज़ें थपथपा कर नारे भी लगाए थे, 'जय बांग्ला : जय इंदिरा गांधी'। भारतीय जनसंघ इंदिरा गांधी के बंगला देश की स्वतंत्रता के लिए किए जा रहे प्रयासों में अपना समर्थन देने में हिचकी नहीं। वास्तव में, उस समय हर राजनीतिक दल इंदिरा गांधी को एक होकर समर्थन दे रहा था। कांग्रेस के मोरारजी देसाई जैसे नेता एक दूसरे से बढ़-चढ़कर इंदिरा गांधी की तारीफ़ कर रहे थे और यहाँ तक कि भारतीय जन संध के अग्रणी नेता और उस समय विपक्ष के नेता श्री अटल बिहारी वाजपेई ने उन्हें संसद में 'दुर्गा का अवतार' कहा था। हाँ! सीपीआई (एम) के नेताओं ने अपने आपको इन सब से अलग रखा था। इन उपलब्धियों के बाद इंदिरा गांधी जी को भारत रत्न से सम्मानित किया गया था। इसके 40 वर्ष बाद बांग्लादेश ने 25 जुलाई, 2011 को स्वर्गीय इंदिरा गांधी को बांग्लादेश के स्वतंत्रता संग्राम में बहुमूल्य योगदान के लिए बांग्लादेश का सर्वोच्च राजकीय सम्मान 'बांग्लादेश स्वाधीनता सम्मान' प्रदान किया।

इस प्रकार इंदिरा गांधी बांग्लादेश के सम्मान को प्राप्त करने वाली विश्व में इकलोती प्रथम महिला बन गईं बेशक उन्हें यह सम्मान उनकी मृत्योपरांत ही दिया गया है। इसे ढाका में इंदिरा गांधी की पुत्रवधू श्रीमती सोनिया गांधी ने प्राप्त किया था। इस अवसर पर बांग्लादेश के राष्ट्रपति श्री जिल्लुर रहमान ने आभार के अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा था, ''आशा और शक्ति की प्रतीक इंदिरा गांधी आज भी हम सबके लिए प्रेरणा का स्त्रोत बनी हुई हैं क्योंकि उन्होंने अपनी राजनैतिक बुद्धिमता और दूरदर्शिता से इतिहास और भविष्य की पीढ़ियों को प्रभावित किया।''

बांग्लादेश संघर्ष के दौरान एक करोड़ शरणार्थियों की देख भाल और बाद में उनकी वापसी सुनिश्चित की गई। मुजीबुर्रहमान को पाकिस्तानी जेल से छुड़ाया गया। आज भारत खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर हो चुका है। अभी वर्ष 2020 में जब कोरोना संकट पराकाष्ठा पर था तो भारत सरकार ने देश के 80 करोड़ लोगों को पूरे आठ महीने तक सबको मुफ़्त राशन उपलब्ध कराया ताकि भूख की वजह से किसी को कष्ट न उठाना पड़े। शायद इस प्रकार लोगों की किसी सरकार द्वारा मदद करने का यह एक रिकार्ड हो सकता है। पर उस समय देश में खाद्यान्न की उपलब्धता नहीं थी फिर भी एक करोड़ शरणार्थियों की देखभाल में कोई कौर-कसर उठा कर नहीं रखी गई थी। इसी प्रकार जब तक पाकिस्तान सेना के 93 हज़ार से अधिक सैनिकों को पाकिस्तान को लौटाया नहीं गया, तब तक उनकी देखभाल की जानी थी।

भारत में वर्ष 1972 और 1974 में भी मौनसून मौसम में बारिश न होने से सूखे की स्थिति बनी रही और खाद्यान्न का उत्पादन कम हुआ। जिस देश ने एक दशक में तीन तीन युद्धों का सामना किया हो, वहाँ मूल्य वृद्धि और बेरोज़गारी की समस्या का सामना करना स्वाभाविक ही था। उधर अमरीका भारत से बुरी तरह नाराज़ था ही, उसने भारत को दी जाने वाली सभी प्रकार की सहायता बंद कर दी। इंदिरा गांधी ने ग़रीबी हटाने का वादा किया था परंतु देश के समक्ष आई अप्रत्याशित परिस्थितियों से देश की अर्थव्यवस्था बुरी तरह प्रभावित हो गई थी। जब कोई देश किसी दूसरे देश की अप्रत्याशित और ग़ैर-परंपरागत रूप से मदद करता है उस स्थिति में देश को उसके परिणामों के लिए तैयार रहना होता है पर यहाँ तो किसी ने किसी तरह के अनुशासन और संयम का परिचय न देते हुए स्थितियों से लाभ उठाना आरंभ कर दिया। देश में तस्करी और कालाबाज़ारी का सैलाब-सा आ गया। इंदिरा गांधी ने क़ानून बना कर उस पर नियंत्रण करने का प्रयास किया और भी कई तरह के क़ानून बनाए गए किंतु कहीं से वांछित परिणाम नहीं आ रहे थे। उधर राजनीतिक धरातल पर भी उथल-पुथल प्रारंभ हो गई। गुज़रात में छात्रों की होस्टल फ़ीस बढ़ाने से वहाँ आंदोलन आरंभ हो गए जिसके कारण वहाँ गुज़रात विधानसभा को भंग करना पड़ा और जब विधानसभा के पुनः चुनाव हुए तो कांग्रेस पार्टी बुरी तरह पराजित हो गई। उधर बिहार में भी छात्र आंदोलन शुरू हो गए जिसकी बागडोर राजनीति से संन्यास ले चुके जय प्रकाश नारायण के हाथ में आ गई और शीघ्र ही यह आंदोलन इंदिरा गांधी बनाम समूचे विपक्ष में तब्दील हो गया। फिर घटनाक्रम इतनी तेज़ी से बदला कि उस समय आपात स्थिति की घोषणा करना इंदिरा गांधी की मजबूरी

बन गई। मैं आपात स्थिति लागू करने के लिए यहाँ इंदिरा गांधी जी का समर्थन नहीं कर रही हूँ बल्कि इस बात पर बल देना चाहती हूँ कि उस समय इंदिरा गांधी को नीचा दिख़ाने और उन्हें बदनाम करने के लिए अंतरराष्ट्रीय धरातल पर कई एजेंसियाँ विशेष रूप से अमरीका की सीआईए बहुत सक्रिय थीं। उन्होंने देश में प्रोपागेंडा कर देश में ऐसा माहौल बनाया कि चारों तरफ़ अफ़रा-तफ़री का माहौल बना दिया गया। देश के लोगों की इस सोच को कुंद कर दिया गया कि ऐसे समय में हमें संयम बरतना होगा और कुछ बलिदान भी करना होगा।

इंदिरा गांधी का अंतिम कार्यकाल : आपातस्थिति के दौरान सीआईए की भारत में दुष्प्रचार मशीनरी चौबीस घंटे इतनी सक्रिय थीं कि अंततः इंदिरा गांधी ने आम चुनावों की घोषणा कर दी। बाक़ी बातें इतिहास बन चुकी हैं। जनता दल की सरकार ढाई वर्ष तक मुश्किल से चल सकी और 1980 के मध्यावधि चुनाव में इंदिरा गांधी की कांग्रेस फिर जीत गई और एक बार पुनः वे प्रधानमंत्री बन गईं। 1980 से 31 अक्टूबर, 1984 तक वह प्रधानमंत्री रहीं और उनका यह कार्यकाल अत्यंत संघर्षपूर्ण रहा।

संजय गांधी की विमान दुर्घटना : 1980 में चुनाव जीत कर इंदिरा गांधी भारत की चौथी बार प्रधानमंत्री बनीं थीं परंतु अभी उन्हें शपथग्रहण किए कोई पाँच महीने ही हुए थे कि उनके बेटे संजय गांधी की एक विमान दुर्घटना में मृत्यु हो गई। यह उनके लिए बहुत बड़ा सदमा था। संजय गांधी को उनके उत्तराधिकारी के रूप में जाना जाता था। राजीव गांधी को राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी किंतु उन्हें अपनी माँ की मदद के लिए पायलट की नौकरी छोड़ कर आना पड़ा था। कहा तो यह भी जाता था कि संजय गांधी ने जो विमान उड़ाया था, उससे छेड़छाड़ की गई थी क्योंकि इंदिरा गांधी के सशक्त व्यक्तित्व के कारण विदेशी ताक़तों सहित कईयों को उनका दुश्मन बना दिया था।

ब्लूस्टार आपरेशन और इंदिरा गांधी की शहादत : इंदिरा गांधी इस सदमे से कितना उबर पाईं, कोई नहीं जानता। पर यह सब जानते हैं कि पंजाब में उभरती आतंकवाद की समस्या ने देश के नाक में दम कर दिया था। भारत के हाथों करारी हार के कारण पाकिस्तान कई तरह से बदला लेने की जुगत भिड़ा रहा था और उसने पंजाब को खालिस्तान बनाए जाने के लिए भड़काया। पंजाब में राजनीतिक अस्थिरता के कारण राष्ट्रपति शासन लगाना पड़ा परंतु आतंकवाद की समस्या वैसे ही बनी रही। इस बीच भिडरावाले ने स्वर्ण मंदिर में घुस अकाल तख़्त पर क़ब्ज़ा कर लिया और अंदर मोर्चे बना लिए। रूस के माध्यम से ही पता चला कि भिंडरावाला स्वर्ण मंदिर से देश से पंजाब को अलग करने के लिए स्वतंत्रता की घोषणा करने वाला है। मज़बूरन देश हित में इंदिरा गांधी को फिर एक कड़ा फ़ैसला करना पड़ा ऑपरेशन बलूस्टार का। 4 जून, 1984 को भारतीय सेना ने आपरेशन ब्लूस्टार आरंभ किया। इसमें आतंकवादियों ने संगत के रूप में आए लोगों को ढाल की तरह इस्तेमाल किया। भिंडरावाला मारा गया तो साथ में और भी लोग मारे गए। स्वर्ण मंदिर ख़ाली करवा लिया गया परंतु आतंकवाद की समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा था। आपरेशन ब्लूस्टार के कारण सिख जाति के लोग इंदिरा गांधी से ख़ासा नाराज़ हो गए। अंततः 31 अक्टूबर, 1984 को इंदिरा गांधी की निजी सुरक्षा में तैनात दो सिख सुरक्षाकर्मी

बेअंत सिंह और सतवंत सिंह ने प्रधानमंत्री के निवास स्थान पर उन्हें अपनी गोलियों का निशाना बनाया और इस तरह यह वीरांगना देश-हित में ही शहीद हो गईं।

31 अक्टूबर, 1984 को मैं सुबह 10 बजे संसद मार्ग पर रिज़र्व बैंक के बस स्टैंड पर उतरी। संसद भवन एनेक्सी जाने के लिए मैंने क़दम बढ़ाया ही था कि पता चला कि इंदिरा गांधी को अपने सुरक्षा कर्मियों ने गोलियों से छलनी कर दिया है। उस समय के सदमें को बयान करने के लिए मेरे पास शब्द नहीं है। पूरा देश स्तब्ध रह गया। इंदिरा गांधी एक लोकप्रिय प्रधानमंत्री थीं और इस तरह अपने सुरक्षा कर्मियों के हाथों मारा जाना राष्ट्र के लिए बहुत बड़ी क्षति थी और अपनी प्रिय नेता पर इस कायराना हमले से समूचा राष्ट्र बहुत आहत और क्षुब्ध था। उनके दुःख का पारावार नहीं था। उस पर कुछ सिख तत्त्वों ने उनकी मृत्यु पर ख़ुशी ज़ाहिर करने के लिए मिठाई बाँटी। इससे कांग्रेस के लोग बहुत आहत हुए और शाम होते-होते जब तक स्वर्गीय इंदिरा गांधी को श्रद्धांजलि देने के लिए उन के पार्थिव शरीर को तीनमूर्ति भवन में रखा गया तो पूरे देश से बेहिसाब भीड़े उमड़ पड़ी तो दूसरी ओर दिल्ली में दंगों की सुगबुगाहट सुनाई देने लगी और सिखों पर हमले होने लगे।

इंदिरा गांधी को श्रद्धांजलि : मैं भी अपनी गाड़ी ले कुछ लोगों को साथ ले इंदिरा गांधी जी को अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि देने के लिए शाम को तीन मूर्ति भवन पहुँचीं। तीन मूर्ति भवन के चारों तरफ़ लोगों की अंतहीन कतारें लगीं थीं। सभी ग़मगीन चेहरे अपने प्रिय नेता की एक अंतिम झलक देखने के लिए घंटों क़तारों में लगे रहे। मैं निराश होकर लौटना चाहती थी तो तीन मूर्ति लेन से गुज़रते हुए मुझे तीन मूर्ति भवन का एक साइड गेट दिखा। मैंने उस द्वार के लिए अपनी गाड़ी मोड़ दी और द्वार पर खड़े सुरक्षाकर्मियों से कहा कि यह पार्लियामेंट की गाड़ी है। मेरी गाड़ी पर पार्लियामेंट का स्टीकर लगा हुआ था और उन्होंने मेरी गाड़ी रोकी नहीं। मैंने अंदर जा कर अपनी गाड़ी पार्क की और एक ऊँचे अहाते की सीढ़ियाँ चढ़ उस स्थान पर पहुँची जहाँ से उस कक्ष में जाने के लिए लाइन लगी थी जहाँ इंदिरा जी का पार्थिव शरीर अंतिम दर्शन के लिए रखा गया था। वहाँ सिनेजगत् के प्रसिद्ध अभिनेता राज कपूर और उन का सारा परिवार मौजूद था। अन्य अनेक जाने अनजाने गणमान्य सभी मौजूद थे। मैं समझ गई मैं वी,पी.आई गेट से अंदर आई थी और वहाँ से मुझे अपनी प्रिय नेता इंदिरा गांधी को श्रद्धांजलि देने का अवसर मिल गया। वहाँ राजीव गांधी अपने परिवार के साथ मौजूद थे। वहाँ से बाहर निकल जब अपने घर जाने के लिए मोती बाग क्रास कर रही थी तो बहुत सारे लड़के लाठियाँ लिए सड़क पर खड़े थे। मैंने गाड़ी रोकी और पूछा, ''क्या हुआ? तो बताया गया कि मोती बाग के गुरूद्वारे से बहुत सारे सिख तलवारों से लैस इधर हमले के लिए आने वाले हैं और उन्होंने कहा कि आप यहाँ से जल्दी निकल लो। डर के मारे मेरा बुरा हाल था। गाड़ी ड्राइव करना मुश्किल लग रहा था। ख़ैर, किसी तरह आर.के. पुरम सेक्टर आठ अपने घर पहुँची। वह रात बड़ी डरावनी थी। सारी रात सड़कों पर लोगों के भागने की आवाज़ें आ रहीं थीं। मैंने रात को बारह बजे के क़रीब पुलिस स्टेशन फ़ोन किया और पूछा, ''यह चारों तरफ़ यहाँ क्या हो रहा है? कृपया आइये और देखिए।'' पुलिस वाले ने जवाब दिया, ''आप

यहाँ की बात कर रही हैं, यहाँ तो पूरे शहर में ऐसी भागदौड़ मची हुई है।'' और उसने फ़ोन काट दिया। 1984 में हुए दंगे अब देश का एक दुःखद और दिल दहलाने वाला इतिहास बन चुका है।

आपात स्थिति लगाने के लिए उनके नेतृत्व की बहुत आलोचना की जाती है। पर मेरा हमेशा यह पुख़्ता मत रहा है कि जे.पी. आंदोलन अप्रत्यक्ष रूप से बाहरी ताक़तों द्वारा भड़काया आंदोलन था। इंदिरा गांधी को बांग्लादेश के कारण हुए युद्ध और शरणार्थियों की समस्या और अन्य कारणों से कमज़ोर हुई अर्थव्यवस्था को संभालने का पर्याप्त समय नहीं दिया गया और जब जय प्रकाश नारायण ने 24 जून, 1975 को रामलीला मैदान में अपने जन संबोधन में पुलिस और सेना को सरकार के आदेश न मानने का आह्वान किया तो ऐसे में किसी की भी सरकार होती, वह वही करती जो उन परिस्थितियों विशेष में इंदिरा गांधी ने किया। कुछ भी हो, इंदिरा गांधी के रूप में जो नेतृत्व भारत को मिला, वह अपने आप में बेमिसाल है और कमाल यह भी है कि कांग्रेस के जिन नेताओं ने उन्हें यह सोच कर प्रधानमंत्री बनाया था वह उस महिला को साध अपनी मनमानी करेंगे, वह ग़लत सिद्ध हुए... उस महानायिका को कभी भारत भूल नहीं पाएगा जिन्होंने अपनी शहादत से एक दिन पहले अर्थात् 30 अक्टूबर, 1984 को भुवनेश्वर में एक जनसभा को संबोधित करते हुए कहा था, ''मुझे चिंता नहीं है कि मैं जीवित रहूँ या नहीं रहूँ, जब तक मेरी साँस में साँस है देश की सेवा करती रहूँगी और अगर मेरी जान जाएगी भी तो मैं कह सकती हूँ कि मेरे ख़ून का हर एक क़तरा भारत को मज़बूत करने के काम आएगा।'' ऐसी महानेत्री की शहादत पर राष्ट्र फूट फूट कर रोया था। देश के प्रसिद्ध कवि डॉ. हरिओम पंवार ने उन्हें तब अश्रुपूरित श्रद्धांजलि देते हुए जो कविता लिखी थी उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ प्रस्तुत करते हुए मैं भी पुनः उन्हें अपनी भावपूर्ण श्रद्धांजलि देना चाहती हूँ :--

''वो पर्वत राजा की बेटी, ऊँची हो गई हिमालय से। जिसने भारत पहले माना, सब धर्मों के देवालय से। भूगोल बदलने वाली वह, इतिहास बदल कर चली गई। जिससे हर दुश्मन हार गया, अपनों के हाथों छली गई।''

❑

संदर्भ

1. The Dramatic Decade : Indira Gandhi Years, Pranav Mukherjee, Rupa Publications
2. A Road to Power, Nayan Tara Sehgal
3. wikipedia.org.wiki
4. Indira Gandhi : Jai Ram Ramesh, Hindi translation, Archit Pandey
5. अमर उजाला, 18 नवंबर, 2017
6. अमर उजाला, काव्य डेस्क, 31 अक्टूबर, 2019

अरविंद भारत

‘हिंदी हो स्वाभिमान की भाषा’ विषय पर एक अंतर्राष्ट्रीय वेबीनार : संदर्भ भारत की स्वतंत्रता का अमृत महोत्सव

29 सितंबर, 2021 को विधि भारती परिषद् ने योग संस्कृति उत्थान पीठ एवं अखंड भारत उत्थान समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में एक अंतरराष्ट्रीय वेबीनार का आयोजन किया जिसमें देश-विदेश के विद्वानों ने भाग लिया और अपने विचार व्यक्त किए। यह अंतर्राष्ट्रीय वेबीनार भारत की स्वतंत्रता के अमृत महोत्सव के उपलक्ष्य में ‘हिंदी हो स्वाभिमान की भाषा’ जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर आयोजित किया गया था। इस कार्यक्रम का शुभारंभ योग संस्कृति उत्थान पीठ के अध्यक्ष डॉ. राजेश बत्रा जी के वेद मंत्र गायन से हुआ। विधि भारती परिषद् की महासचिव डॉ. सन्तोष खन्ना ने कार्यक्रम का संचालन करते हुए हिंदी हो स्वाभिमान की भाषा विषय के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए बताया कि यद्यपि हिंदी का प्रचार-प्रसार काफी बढ़ गया है और यह भी कहा जा रहा है कि हिंदी ने विश्व में प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया है फिर भी एक बात जिसकी ओर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है कि हर भारतीय में अपनी भाषाओं विशेष रूप से हिंदी को लेकर ग़र्व और स्वाभिमान की भावना का संचार होना चाहिए। जहाँ तक हिंदी का संबंध है वह संघ की राजभाषा है, देश के बारह राज्यों और संघ राज्य क्षेत्रों की राज्य भाषा और राजभाषा है तथा कुछ राज्यों की द्वितीय भाषा भी है। यह ठीक है कि देश की सर्वोच्च संस्था संसद में हिंदी गूँज रही है जहाँ कुछ वर्ष पहले संसद में अधिकांश संसद सदस्य अपनी बात अंग्रेज़ी के माध्यम से अभिव्यक्त करते थे, अब लगभग अस्सी प्रतिशत सांसद अपनी बात हिंदी के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं और शेष संसद सदस्य भी इस बात को अधिकाधिक अनुभव करने लगे हैं कि यदि हमें राष्ट्रीय राजनीति में स्वयं को चमकाना है तो उन्हें संवाद के लिए भाषा हिंदी अपनानी होगी।

मीडिया में भी अनेक हिंदी चैनलों में हिंदी गुंजायमान होती रहती है। यू.एन.ओ. की हिंदी चाहे अधिकारिक भाषा न बनी हो, परंतु वहाँ भी हिंदी गुंजायमान हो रही है। पिछले सात वर्षों से अधिक समय से जब भी भारत के प्रधानमंत्री संयुक्त राष्ट्र संघ में भाषण देते हैं उनका संबोधन हमेशा हिंदी में होता है। हमारी पूर्व विदेश मंत्री श्रीमती सुषमा स्वराज भी सयुंक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में अपने अभिभाषण दे चुकी है। इससे पहले तत्कालीन विदेश मंत्री रहे श्री अटल बिहारी वाजपेयी पहली बार संयुक्त राष्ट्र संघ में हिंदी में अपना भाषण दे चुके

थे। यह सब होते हुए भी कहना पड़ेगा कि हिंदी वाले अपनी भाषा पर इतना गर्व नहीं करते। इसके लिए हिंदी वालों को क्षेत्रीय भाषा-भाषियों से सीखना चाहिए कि कैसे वह अपनी भाषा को अपनी अस्मिता और अस्तित्व की भाषा बनाते हैं चाहे वह तमिल-भाषी हो या बंगला-भाषी या अन्य। हिंदी को भी हमें अपने स्वाभिमान की भाषा बनाना होगा।

इस विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए डॉ. रेखा व्यास ने कहा कि भाषा बहुत बड़ी शक्ति है। भाषा मानव समाज के लिए एक अमूल्य संपदा है। भाषा एक बहुत बड़ा चमत्कार है। भाषा को सहेज कर रखने की ज़रूरत है क्योंकि भाषा हमारी अभिव्यक्ति का साधन है वह हमारा रक्षा कवच बन जाती है। भाषा एक ऐसा चमत्कार और समाज को मिला एक ऐसा उपहार है जिसे सहेज कर रखने की ज़रूरत है। भाषा हमारी अभिव्यक्ति का साधन है भाषा ही किसी देश की संस्कृति का रक्षा कवच है। जो स्वतंत्र भारत में पैदा नहीं हुए उनकी बात छोड़ दें किंतु जो स्वतंत्र राष्ट्र में पैदा हुए हैं तो भाषा चयन के बारे में वह कब स्वतंत्र होंगे। भाषा किसी समाज का अटूट हिस्सा तभी बन सकती है जब वह व्यवहार में आए, जब उसमें रोज़गार मिले। लोग अंग्रेज़ी को सिर-माथे पर क्यों बिठाते हैं क्योंकि उसके माध्यम से दूसरे देशों में और अपने देश में रोज़गार की अनंत संभावनाएँ हैं। हिंदी के संबंध में रोज़गार की अपने ही देश में उतनी संभावनाएँ नज़र नहीं आतीं। जिस दिन हिंदी लोगों को अंग्रेज़ी की भाँति रोज़गार देने की की भाषा बन जाएगी, हिंदी की तब कोई उपेक्षा नहीं कर सकेगा। ज़रूरत है कि हम हिंदी को रोज़गार की भाषा बनाएँ और उससे पहले भी हमें हिंदी को उच्च शिक्षा का माध्यम भी बनाना होगा।

प्रतिष्ठित साहित्यकार और बेला पत्रिका के संपादक डॉ. पंकज, संजय पंकज जी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि आज विराट भारत देश की यह सारस्वत उपलब्धि है कि हम आज इस विषय पर चर्चा कर रहे हैं। हिंदी विश्व भाषा के रूप में समादृत है। भारत के ज्ञान से, भारत के योग से, उसके युवा शौर्य से और अनेक उसकी उपलब्धियों से तो जहाँ तक हिंदी का प्रश्न है तथाकथित राजनेताओं और अंग्रेजी समर्थक को इस बात को शायद समझ नहीं पा रहे हैं कि भारत के पास एक अघोषित राष्ट्रभाषा है जो कि हिंदी है। आज भारत में धारा 370 को हटा दिया है, करोड़ों लोग हमसे हैं, हिंदी के माध्यम से हैं तो हिंदी के महत्त्व को कम करके नहीं आँका जा सकता। हिंदी स्वतंत्र आत्मा का संगीत है। पर यह भी कटु सच्चाई है कि हम स्वतंत्र हुए हैं भौगोलिक रूप से लेकर शायद मानसिक गुलामी हम पर अभी भी तारी है। हम उससे अभी तक मुक्त नहीं हुए। एक और बात न्याय प्रक्रिया में हिंदी के प्रति अभी भी उपेक्षा का भाव बना हुआ है उसकी ओर ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि न्याय की भाषा हिंदी होनी चाहिए इसके लिए हमें हिंदी के प्रति दृढ़-शक्ति चाहिए। उसका दर्शन होना चाहिए क्योंकि हिंदी हमारी चेतना है हमारे इतने में इंडिया को हटाते हुए भारत को सामने लाने की ज़रूरत है। वैसे भी हिंदी हमारे समाचार-पत्रों, सिनेमा, संगीत की भाषा है। हिंदी के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। कहते हैं न जो महाभारत में नहीं

है, वह ब्राह्मांड में नहीं है। संस्कृत का महत्त्व को हम भुला नहीं सकते। हिंदी और दूसरी हमारी भारतीय भाषाएँ संस्कृत की ही दुहिताएँ हैं इसलिए वह हमारी संस्कृति का प्रतीक है। हमें हिंदी को पूरी शक्ति से अपनाने की ज़रूरत है। अंग्रेज़ी भाषा अपने स्थान पर है अपनी भाषा का स्थान अपना ही होता है। उसके प्रति हमें स्वाभिमान की भावना पैदा करनी होगी।

चीन के एक विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफ़ेसर के पद पर कार्य करने वाले डॉक्टर विवेक मणि त्रिपाठी ने भी इस वेबीनार में अपने सारगर्भित विचार व्यक्त किए। उन्होंने बताया कि वर्ष 2016 में वर्ल्ड इकोनॉमिक फ़ोरम में एक सर्वे के अनुसार हिंदी को 10 भाषाओं में शामिल किया गया था। हिंदी हमारे प्रेम और स्वाभिमान की भाषा है फिर भी वह अभी तक घोषित रूप से हमारी राष्ट्रभाषा नहीं है। इज़राइल की प्रगति अपनी भाषा के माध्यम से ही हुई है इसलिए भारत को भी को भी ज्ञान और विज्ञान की भाषा हिंदी को बनाया जाना चाहिए।

जहाँ तक चीन का संबंध है वहाँ 15 विश्वविद्यालयों में हिंदी पढ़ाई जा रही है। 1942 में मात्र कुछ ही स्थानों पर हिंदी पढ़ाई जा रही थी किंतु अब यह 15 विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जा रही है संस्कृत का चीनी भाषा पर बहुत अधिक प्रभाव है। चीन की जो भाषा मंदारिन है -- वह शब्द मंदारिन भी संस्कृत से आया है। मंदारिन भाषा में संस्कृत के बीस हज़ार से अधिक शब्द हैं। चीन पर भारतीय संस्कृति का बहुत प्रभाव है। भारत ने वहाँ सांस्कृतिक रूप से राज़ किया है। वहाँ भारतीय साहित्य का अनुवाद किया गया है। सैकड़ों यात्री भारत आए थे -- भारतीय संस्कृति और संस्कृत जानने के लिए क्योंकि उस वक़्त हमारे विश्वविद्यालय हुआ करते थे। ईसा पूर्व 627 में चीन से आए यात्री अपने साथ अनेक ग्रंथ साथ ले गए थे। चीन में 80 प्रतिशत बौद्ध धर्म-स्थल चीन में हैं। भारत की सभ्यता का वहाँ कितना विस्तार हुआ है इसका अंदाज़ा भी नहीं लगा सकते। हमें अपनी संस्कृति को पहचानना है और यह पहचान हम अपने भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही बेहतर ढंग से कर सकते हैं। अतः हिंदी को उचित महत्त्व दिया जाना बहुत ज़रूरी है।

प्रसिद्ध बाल साहित्यकार और दिल्ली विश्वविद्यालय की प्रोफ़ेसर डॉ. शकुंतला कालरा ने हिंदी को राष्ट्र की आत्मा बताते हुए कहा कि भारत में हिंदी की स्थिति का आकलन करते हुए हमें स्वयं से ही कुछ प्रश्न पूछने होंगे कि क्या हम बोलचाल में हिंदी का प्रयोग करते हैं? क्या विवाह और अन्य कार्यक्रमों के कार्ड आदि हिंदी में बनवाते हैं? पत्र-लेखन क्या हिंदी में करते हैं? मोबाइल पर कौन-सी भाषा का इस्तेमाल करते हैं? हिंदी व्यवहार से और अभ्यास से आएगी? चिंता का विषय है कि आज विश्व में हिंदी का महत्त्व बढ़ रहा है परंतु देश में घट रहा है। अंग्रेजी आज हमारे झूठे स्वाभिमान की भाषा बनी हुई है। अभिभावक बच्चों को अंग्रेज़ी स्कूलों में पढ़ाना पसंद करते हैं। ज़्यादातर शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बना हुआ है। बेशक हिंदी संघ की राजभाषा है, देश के कई राज्यों की राजभाषा है और देश की अघोषित राष्ट्र और संपर्क भाषा है। परंतु कुल मिला कर हम हिंदी को देश में वह स्थान नहीं दे पा

रहे हैं, जिसकी वह अधिकारी है। भाषा की अस्मिता के प्रति सचेत होने की आवश्यकता है।

उच्चतम न्यायालय की प्रतिष्ठित अधिवक्ता श्रीमती मीरा कोड़ा पटेल ने न्यायालयों में न्याय की भाषा पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि भारत में न्याय की भाषा अंग्रेज़ी होने के कारण ग़रीबों को न्याय मिलने में बहुत बाधाओं का सामना करना पड़ता है। निचली अदालतों में एफ.आई.आर. फ़ाइल करने या एवीडेंस फ़ाइल करने में उन्हें उसका अंग्रेज़ी में अनुवाद करवाना पड़ता है और अगर उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय का फ़ैसला आया है तो फिर अनुवाद पर ख़र्च करना पड़ता है। न्याय के क्षेत्र में अंग्रेज़ी हम पर इतनी हावी है कि कोई अधिवक्ता अगर निचली अदालत में भी ज़िरह आदि हिंदी में करता है तो वह हँसी का पात्र बनता है। समझा जाता है कि उसे कुछ आता-जाता नहीं है और वह एक अच्छा अधिवक्ता नहीं है। हिंदी तो हमारी संस्कृति की वाहक है। जब तक उसे न्याय की भाषा नहीं बनाया जाता, इस देश का ग़रीब आदमी न्याय नहीं प्राप्त कर सकता है।

गाज़ियाबाद के एक कॉलेज में हिंदी की एसोसिएट प्रोफ़ेसर डॉ. दीप्ति वाजपेयी ने चर्चा में भाग लेते हुए बताया कि उत्तर प्रदेश में डिजिटल लाइब्रेरी बनाई गई है। यद्यपि वर्ष 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में हिंदी को शिक्षा का माध्यम बनाने की बात कही गई है पर उच्च शिक्षा में अच्छी पाठ्य-सामग्री नहीं मिल पाती, आई.ए.एस. और इंजीनियरिंग परीक्षा में बैठने के लिए भी हिंदी में स्तरीय पुस्तकें उपलब्ध नहीं हैं। हिंदी को रोज़गार के साथ जोड़ने से ही उसे लोग स्वयं ही अपनाने लगेंगे।

योग संस्कृति उत्थान पीठ के अध्यक्ष डॉ. राजेश बत्रा ने इस कार्यक्रम का श्रीगणेश ही वेद मंत्रों का उच्चारण से करते हुए हिंदी भाषा को देश की संस्कृति का वाहक कहा। यही नहीं, हिंदी देश की राजभाषा है, संपर्क भाषा है राष्ट्र-भाषा है। धर्म-कर्म और मनोरंजन की भाषा है। हिंदी का मान-सम्मान करना हम सब का कर्त्तव्य है। अंग्रेज़ी भाषा अवश्य पढ़ी जाए क्योंकि वह विश्व के लिए एक महत्त्वपूर्ण खिड़की खोलती है परंतु भारत की भाषाओं को उचित माना-सम्मान मिलना ही चाहिए। कार्यक्रम में मुंबई की मंजु रानी जैन और दिल्ली में रेलवे में कार्यरत् श्रीमती सपना दत्ता ने भी अपने विचार व्यक्त किए। अंत में, अरविंद भारत ने कार्यक्रम का समाहार करते हुए सबका धन्यवाद ज्ञापन किया।

❑

डॉ. उषा देव

मातृ-दिवस

प्रत्येक/हर वर्ष मई मास के दूसरे रविवार को 'मदर-डे' या मातृ-दिवस के रूप में मनाया जाता है। मातृ-दिवस का आरंभ एना जार्विस ने अपनी माताश्री की याद में 9 मई, 1905 में किया।

संसार की प्रत्येक भाषा ही नहीं वरन् बोलियों में भी माँ अर्थात् जननी के लिए मदर, मम्मी, अम्मा, माता, माच् (रूसी भाषा) आदि शब्द मिलते हैं। माँ ही संतान की प्रथम एवं सच्ची गुरु है। माता शब्द की उत्पत्ति 'मा माने', 'माङ् माने' अथवा 'मान् पूजायान्' धातु से 'नप्तृनेष्टृ' इत्यादि उणादिसूत्रानुसार 'तृ' प्रत्यय लगाने से 'मातृ' शब्द निष्पन्न होता है। 'मातिगर्भोऽस्यामिति माता' तथा 'मान्यते पूज्यते जनैरिति वा माता'। अर्थात् माता वह है जो उसे गर्भ में धारण करती है। 'गर्भधारणपोषणाद्धि ततोमाता गरीयसी' -- गर्भ धारण करने और पालन-पोषण करने के कारण माता महान् कही गई है। यही नहीं, 'मात्रा समं नास्ति शरीरपोषणम्' अर्थात् शरीर पोषण में माता के समान और कोई नहीं है। ब्रह्मवैवर्त पुराण (ब्रह्म. ग. 15 अध्याय) में 16 माताओं का ज़िक्र आया है --

''स्तनदात्री गर्भघात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका।।
सगर्भजा या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा।।
मातुः चितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः।।''

अर्थात् स्तन पिलाने वाली, गर्भ धारण करने वाली, भोजन देने वाली, गुरु पत्नी, इष्ट देवता की पत्नी, पिता की पत्नी (विमाता), पितृकन्या (सौतेली बहन), सहोदरा बहिन, पुत्रवधू, सास, नानी, दादी, भाई की पत्नी, मौसी, बुआ और मामी -- वेद में मनुष्यों के लिए सोलह प्रकार की माताएँ बतलाई गई हैं।

'माँ' शब्द में एक अनिर्वचनीय पवित्रता है। हमारे कोमल एवं उच्चतम भाव तथा विचार 'माँ' के प्रति ही होते हैं। दूसरी ओर नारी चाहे कितनी ही अबला, कुरूपा या फिर स्खलनशील हो; पर माता के रूप में उसका उत्कृष्ट रूप देखने को मिलता है। वह स्व-संतति के पालन-पोषण,

शिक्षा आदि के प्रति अत्यंत सचेत रहती है। इसी कारण हम 'माँ' शब्द का प्रयोग उन वस्तुओं के लिए करते हैं जिन्हें हम सबसे अधिक प्यार करते हैं। जैसे मातृभाषा, मातृभूमि। कारण, हम अपनी भाषा और देश को दूसरों से श्रेष्ठ समझते हैं। यही नहीं, कभी-कभी भगवान् की भी माँ के रूप में भावना की जाती है जैसे कि हमारे देश में शक्ति या माँ के रूप में भगवती, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती आदि की पूजा की जाती है। हमारी संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति में माता को सर्वोच्च पदवी दी गई है --

''उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।'' (मनुस्मृति, 2.145)

अर्थात् दस उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता और सहस्र पिताओं की अपेक्षा माता गौरव में अधिक है। हिंदुओं के महान् स्मृतिकार मनु ने माता को सर्वोच्च पदवी पर बिठाया है और कहा है कि पुत्र को माता के पैर पहले छूने चाहिए और बाद में पिता के। माता का स्वसंतान के प्रति निःस्वार्थ एवं त्यागपूर्ण वात्सल्य रहता है। जननी के वात्सल्य में काम की दुर्गंध नहीं रहती; लोभ से उत्पन्न अस्थिरता और स्वार्थ से वह कलुषित नहीं हुआ करता। माताओं का स्नेह, दया और क्षमा असीम होती है। कारण, सहिष्णुता और त्याग माता के स्वाभाविक गुण होते हैं। अपने बच्चे को पेट में नौ महीने रखने के तपस्याकाल में ही ये गुण स्वयमेव उसके हृदय में अंकुरित हो जाते हैं और फिर जीवनपर्यंत विद्यमान रहते हैं। अर्जुन, कर्ण, भीष्म पितामह, अभिमन्यु, शिवाजी, महाराणा प्रताप, गुरु गोविंद सिंह जैसी विभूतियों ने अपने ऊपर माताओं के ऋण को मुक्त कंठ से स्वीकार किया है। गर्भावस्था में भगवान् बुद्ध को शिक्षा देनेवाली उनकी पवित्र अंतरात्मा वाली माता थी। ध्रुव, प्रह्लाद, रामदास, नरसिंह मेहता में जो अद्‌भुत भक्ति बल था, वह सब आर्य जननी की प्रबल इच्छा और आध्यात्मिक संस्कारों का प्रभाव था। यही नहीं, दधीचि, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य आदि में जो अलौकिक योग बल था, उसका कारण उनकी माताएँ थीं। तभी तो माता को बच्चे का प्रथम गुरु कहा गया है। वह सब प्रकार के कष्ट उठा कर बच्चे का पालन-पोषण करती है। यही नहीं, सब प्रकार के कष्टों तथा संकटों का जी-जान से निवारण करने में रात-दिन एक कर देती है। यही मुख्य कारण है कि हमारे वेद 'मातृदेवा भव' अर्थात् पृथ्वी पर भगवान् की स्वरूप भूता माता ही है -- कह उठे हैं। (तैत्तिरीय उपनिषद् 1.11)

वास्तव में, संसार में सबसे दुष्कर भार स्त्री के कंधे पर है। मातृत्व का पद ग्रहण करना संसार का सारा दायित्व लेना है। इसके आगे आदर्श गृहिणी और आदर्श माता --यही दो कार्य प्रमुख हो जाते हैं। माता का उत्तरदायित्व शब्दों में वर्णित करना कठिन है। बच्चा तकलीफ़ में है या बीमार है तो रात-रात जाग कर उसकी देखभाल करती है। परिवार के सारे कार्यों की निरीक्षिका वही होती है। हम अमूमन् देखते हैं कि जब किसी मनुष्य पर कोई विपत्ति आती है, तब वह 'अरी मेरी मैया' कह कर माता का स्मरण करता है -- 'आपदि मातैव शरणम्'। माता के समान शरीर का कोई और पोषक नहीं है --

'मात्र समं नास्ति शरीरपोषणम्।'

माता (जननी -- पैदा करने वाली) का यह स्नेह केवल मनुष्य योनि में ही दृष्टिगत नहीं होता; वरन् वह तो पशु, पक्षी, जानवर, स्थलचर आदि अन्य योनियों में भी पाया जाता है। पक्षी जैसे चिड़िया, कबूतरी, मैना, कुकुट्टी अंडे पर बैठ कर उनको सेती है और बच्चे निकल आने पर दाना चुगा-चुगा कर तब तक पालन करती है जब तक उनमें पर निकलें और वे उड़ने तथा दाना चुगने की शक्ति न आ जाए। इसी प्रकार गाय, बकरी, कुतिया, बिल्ली, चूहिया आदि भी बच्चे पैदा होने पर उनकी बाहरी आपत्तियों से तब तक रक्षा करती हैं जब तक वे माता का दूध छोड़ कर स्वयं घास-फूस आदि खाद्य पदार्थ खाने में सक्षम नहीं हो जाते। लेकिन मानव-संतान को स्वावलंबी बनने में ही काफ़ी लंबा समय लग जाता हे। वास्तव में, व्यक्ति, परिवार, समाज एवं देश का भविष्य या कहें सौभाग्य सच्ची हितैषिणी माता के ऊपर निर्भर करता है। वाग्व्यवहार में पहले स्त्री का नाम आता है, पीछे पुरुष का -- जैसे सीता-राम, लक्ष्मी नारायण, गौरी-शंकर, राधा-कृष्ण आदि। वेदव्यास ने अपने प्रबंध काव्य 'महाभारत' में लिखा है कि 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' -- अर्थात् जननी और जन्मभूमि का स्थान स्वर्ग से भी ऊँचा है। इसलिए प्रत्येक प्राणी का यह परम कर्त्तव्य बन जाता है कि वे तन, मन, धन से माता और अपनी जन्मभूमि की सेवा ज़रूर करें।

हमारी संपूर्ण सभ्यता और संस्कृति में नारी का माता रूप ही आदर्श समझा गया। संपूर्ण प्राचीन वाङ्मय इसी मूल धारा से ओत-प्रोत है। प्राचीन प्रस्तर शिल्प में नारी को शांति और गौरव से पूर्ण मुख, मंद-मुस्कराहट और पुष्ट भरे हुए पयोधर, जिन पर राष्ट्र की संतान पलती थी दिखाया गया है। डॉक्टर कहते हैं कि माँ का दूध बच्चे को हृष्ट-पुष्ट ही नहीं करता वरन् कई रोगों से उसकी रक्षा भी करता है। प्राचीनकाल से ही भारत में बच्चे को माँ का ही दूध पिलाया जाता रहा है।

मनुस्मृति में बहुत ही सुंदर भाव स्त्री महत्त्व को बताने में कहे गए हैं --

''प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन।। (9.26)

(भृगु जी महर्षियों से कहते हैं कि) हे महाभाग (मुनियों)! सन्तानोत्पादन के लिए आदर-सत्कार के योग्य घर की शोभारूपिणी ये स्त्रियाँ और लक्ष्मी (शोभा) घर के समान हैं। जिस प्रकार शोभा के बिना घर सुंदर नहीं लगता, इसी प्रकार स्त्री के बिना भी घर सुंदर नहीं लगता। अतः श्री तथा स्त्री में कोई भेद नहीं।

और भी --

''उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबंधनम्।। (2.27)

संतानोत्पादन उत्पन्न हुई संतान की रक्षा (पालन-पोषण) और प्रति दिन के लोक-व्यवहार (अतिथि-मित्रादि-भोजनादिरूप गृहप्रबंध) का मुख्य कारण स्त्रियाँ हैं।

देखा जाए तो स्त्री -- माता, बहिन, बेटी, पत्नी आदि रूप में मनुष्य जीवन में पल-पल सरसता, सहजता प्रदान करती हैं। आज पाश्चात्य जीवन-पद्धति, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, ऐंद्रिय सुख, धन लिप्सा आदि मानव पर हावी हो गया है। पहला कारण, अंग्रेज़ों द्वारा चलाई गई शिक्षा पद्धति और उस पर स्पर्धा, रचनार्थपरता आदि मानव को कुछ अच्छा सोचने एवं करने योग्य ही नहीं छोड़ती। वास्तव में शिक्षा वह है जो मनुष्य में उसके स्वधर्मानुसार कर्त्तव्य को जाग्रत करके उसे उस कर्त्तव्य को पूरा पालन करने योग्य बनाए। प्रकृति के विरुद्ध शिक्षा से कई प्रकार की हानि ही हो रही है। एक साल में 365 दिन और 6 घंटे होते हैं। माँ ने बच्चे के पालन-पोषण में सालों-साल लगाए होते हैं। माना कि उसका निःस्वार्थ मातृत्व भाव, वात्सल्य भाव आदि हज़ारों दिन बच्चे के स्वावलंबी बनने तक लगे होते हैं। लेकिन उस जनयित्री को केवल एक दिन याद करना लज्जास्पद बात लगती है। माँ तो हमारे रोम-रोम में बसी होती है। पास हों या दूर, उसके निश्छल, निःस्वार्थ स्नेह का हमें हर पल आभार व्यक्त-सशब्द या निःशब्द करना बनता है। महाकवि तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में ठीक ही कहा है --

> ''मातु पिता गुर प्रभु कै बानी।
> बिनहिं विचार करि असुभ जानी।।''   (बालकांड चौ. 29.77, दोहा)

अर्थात् माता, पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना विचारे शुभ समझ कर करना चाहिए।

❑

Supreme Court Judgement

Pravakar Mallick & Anr v. State of Orissa - Regarding reservation in promotions

The Court followed the law laid down in M Nagaraj v. Union of India and reiterated that the State is not bound to make reservations for SCs/STs in matters of promotion. However, if they wish to do so, they have to collect quantifiable data showing backwardness of the class and inadequacy of representation of that class in public employment, keeping in mind maintenance of efficiency, as indicated by Article 335 of the Constitution of India.

डॉ. सुधेश

‘आज का दुर्वासा’ कहानी संग्रह : एक विवेचन

श्रीमती सन्तोष खन्ना को मैं कवियित्री, अनुवादिका और विधिवेत्ता के रूप में जानता था, पर जब उनका कहानी-संग्रह ‘आज का दुर्वासा’ मेरे सामने आया और मैंने उसे पढ़ा तो पता चला कि वे समर्थ लेखिका भी हैं। ‘विधि भारती’ की संपादिका के रूप में और विधि भारती संस्थान की संचालिका के रूप में भी वे विख्यात हैं।

‘आज का दुर्वासा’ में सन्तोष खन्ना की सत्रह कहानियाँ संकलित हैं। अधिकांश कहानियाँ सामाजिक अपराध, पुलिस की क्रूरता, निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों के जीवन संघर्ष, पारिवारिक त्रासदी, न्यायपालिका की विसंगतियों आदि से संबंधित हैं। इनमें जहाँ विषय की विविधता है, वहाँ विषय निरूपण और पात्र चित्रण में लेखकीय तटस्थता भी है।

‘आज का दुर्वासा’ संग्रह की पहली कहानी है जो एक प्रतिनिधि कहानी भी कही जा सकती है। दुर्वासा ऋषि अपने क्रोध के लिए प्रसिद्ध हैं। इस कहानी में दुर्वासा के मिथक को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नरेन नामक एक युवक आर्थिक बदहाली के कारण अपराधी बन कर जेल पहुँच जाता है। वहाँ पुलिस की क्रूरता उसे पागल बना देती है। इसमें अपराध का कारण मानव की मजबूरी बताया गया है। पुलिस की दरिंदगी का भी सजीव चित्रण हुआ है।

‘पंसेरी’ एक मार्मिक कहानी है। इसमें निम्न वर्ग की एक नारी रामो का संघर्ष दिखाया गया है। पेट पालने के लिए परिश्रम के साथ उसे अपनी इज़्ज़त बचाने के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। किसना और लाला की नीचता का यथार्थ चित्रण कहानी को मार्मिक बना देता है। रामो अपनी बेटी की इज़्ज़त बचाने के लिए लाला की हत्या ‘पंसेरी’ मार कर कर देती है। कहानी का अंत बड़ा नाटकीय है और शीर्षक ‘पंसेरी’ भी बड़ा सार्थक है।

‘गायत्री’ शीर्षक कहानी नारियों को जला कर मारने की अमानवीय क्रूर घटनाओं पर क्रूर टिप्पणी करती है। गायत्री का पति विभु उसे जला कर मारने की कोशिश करता है, जिसमें वह सफल हो जाता है। पर पुलिस के सामने गायत्री सच बोले तो उसका पति दंडित होगा। उसके अंतर्द्वंद्व का लेखिका ने मार्मिक चित्रण किया है। मरने से पहले गायत्री ने सच्चा बयान दे दिया जिससे विभु का दंडित होना निश्चित हो गया। पर लेखिका ने कहानी का अंत खुला रखा है, जिससे उसके कहानी कौशल का पता चलता है। यह एक मनोवैज्ञानिक कहानी भी है, जिसमें पीड़ित नारी का मनोविज्ञान बख़ूबी उभरा है। क़ानून और न्याय व्यवस्था पर भी यह कहानी एक

व्यंग्य है। यहाँ पत्नी को जला कर मारने के बाद भी पुरुष छूट जाता है। इस कहानी का अंत खुला है, जिसमें यह गुंजाइश है कि पत्नी का हत्यारा अंत में छूट भी जाता है। अक्सर हत्यारे छूट ही जाते हैं।

'प्रायश्चित' शीर्षक कहानी न्यायपालिका के कटु सत्य को उजागर करती है। समीर नामक जज अपनी पत्नी शीतल से कहता है -- "हमारी न्यायपालिका में निर्दोष भी कष्ट सह रहे हैं। जीवन भर मुकदमा लड़ने के बाद अंत में यदि वह निर्दोष सिद्ध होता है तो उसका जीवन तो बर्बाद हुआ ही न।" (पृ. 46) समीर एक आदर्श जन है, पर रखालदास नामक एक सेठ अपने पुत्र को सज़ा से बचाने के लिए दस लाख रुपए की रिश्वत देने की कोशिश करता है। उसकी पत्नी शीतल के विरोध के कारण रिश्वत की राशि वापस कर दी जाती है, पर पति-पत्नी के बीच एक दूरी आ जाती है। शीतल के मन-मंदिर में स्थित पति परमेश्वर की मूर्ति खंडित हो जाती है। समीर अंत में प्रायश्चित करता है पर शीतल मानसिक धरातल पर उससे दूर चली गई। शीतल की प्रतिक्रिया यहाँ कुछ अस्वाभाविक हो जाती है, जब वह अपने बेटे तन्मय को पिता से दूर रखने के लिए हॉस्टल में भेजने का निश्चय करती है और नए गर्भस्थ शिशु का गर्भपात द्वारा अंत कर देती है। जो रिश्वत जज समीर ने अंततः नहीं ली, उसकी पत्नी उसके लिए भी उसे दंडित करती है और समीर दोनों आदर्शवादी पात्र हैं, पर शीतल को अपने पति का आदर्शवाद खोखला लगता है जो रिश्वत की संभावना मात्र से धराशायी हो जाता है। यह कहानी सुखांत है, पर शीतल का अपने पति के प्रति व्यवहार अस्वाभाविक एवं ग़लत है। इसके बावजूद 'प्रायश्चित' संग्रह की श्रेष्ठ कहानी है। न्याय व्यवस्था की पोल खोलने के साथ यह पति-पत्नी के नाजुक रिश्ते के तनावों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी करती है।

'भवानी' शीर्षक कहानी दफ़्तरों में प्रचलित भ्रष्टाचार एवं आपराधिक गतिविधियों पर प्रहार करती है। भवानी के हाथों सरकारी कर्मचारी शर्मा की आकस्मिक हत्या के आरोप में भवानी को जेल हो जाती है। शर्मा ने भवानी पर चाकू से वार किया था; पर उसका वह खुद शिकार हो गया। निरपराधी जेल पहुँच गया। इसमें न्याय व्यवस्था की असंगति दिखाई गई है।

'दर्द का रिश्ता' भी एक मार्मिक कहानी है। इसमें बलात्कार की शिकार नारी का संघर्ष बख़ूबी दिखाया गया है। प्रेमिका से पत्नी बनी एक स्त्री बलात्कार के बाद पति द्वारा छोड़ दी जाती है। पति यह नहीं देखता कि दोष स्त्री का नहीं, बलात्कार करने वालों का है। उसे सहानुभूति देने के बजाय वह उससे दूर चला जाता है ताकि समाज में उसकी झूठी प्रतिष्ठा बनी रहे। बलात्कार के परिणाम किस प्रकार परिवार को तोड़ने वाले, नारी के लिए यातनापूर्ण हैं, यह कहानी बड़े मार्मिक ढंग से दिखाती है।

'सवाब' सामाजिक दंगों का सच ख़ूबी से बयान करती है। नसीमन का पति दंगों में मारा गया, उसका पुत्र अख्तर भी उसमें फँस गया, पर एक हिंदू ने नसीमन को माँ कह कर शरण माँगी तो उसका मातृत्व जाग उठा। उसने दंगाइयों से हिंदू युवक को कुरान की झूठी कसम खा कर भी बचा लिया। मूर्ख समझते हैं कि क़ाफ़िर को मार कर उन्हें सवाब (पुण्य) मिलेगा; पर

नसीमन ने एक हिंदू की प्राण-रक्षा कर सच्चा सवाब पाया। यह एक उत्कृष्ट कहानी है। पर शीर्षक में 'सवाब' का प्रयोग ग़लत है। सही शब्द है सवाब, जिसका अर्थ है पुण्य।

'आँखें' सुधीर और सलमा रहमान के बीच पनपने वाले प्रेम की करुण कहानी है जो देश विभाजन की त्रासदी से जुड़कर सांप्रदायिक दंगों में होने वाले ख़ून-ख़राबे की कहानी बन गई। आँखें चार होने पर दो प्राणियों में प्रेम का जो अंकुर फूटा, वह सुधीर की आत्महत्या के कारण पल्लवित नहीं हुआ। फिर 'आँखें' शीर्षक की क्या सार्थकता रही। इस दुखांत कहानी का यह शीर्षक अटपटा लगता है। कहानी का अंत स्वाभाविक एवं विश्वसनीय नहीं लगता। यदि सुधीर ने सांप्रदायिक उन्माद में सलमा को तलवार से काट डाला था तो वह अंत में होटल कैसे प्रकट हो गई? यदि वह बच गई थी और सुधीर को ढूँढ़ते हुए होटल में उससे मिलने आई थी तो उसे होटल की मुँडेर तक ले जाकर अपनी और सुधीर की मृत्यु का कारण क्यों बनी? इसीलिए मुझे लगता है कि कहानी का अंत विश्वसनीय नहीं है। उसका शीर्षक 'आँखें' तब उचित होता जब प्रेमी युगल का प्यार सांप्रदायिक घृणा के वातावरण को चीर कर स्वयं को सिद्ध करता।

'सदी का सबसे बड़ा सच' दहेज की माँग के कारण शादी से इनकार करने वाली युवती की कहानी है तो 'आख़िर कब' दहेज दिए जाने के बाद भी पति द्वारा प्रताड़ित नारी की करुण कथा है। यह दहेज ऐसा राक्षस है कि इसका पेट कभी नहीं भरता। दहेज की पूर्ति के बाद भी विवाहिता ससुराल में सुखी नहीं रहती, क्योंकि माँगने वाले माँगते ही रहते हैं। शिक्षा के प्रसार के बावजूद और दहेज विरोधी क़ानून के बावज़ूद असंख्य परिवार दहेज की माँग से पीड़ित हैं। अन्य कहानियाँ सामान्य हैं।

समग्र दृष्टि से इस संग्रह की कहानियों के बारे में निस्संकोच कह सकता हूँ कि ये सामाजिक सरोकारों की यथार्थ कहानियाँ हैं, जिनमें से कई बड़ी मार्मिक और उत्कृष्ट कहानियाँ हैं। इनमें मैं 'पंसेरी', 'प्रायश्चित्त', 'दर्द का रिश्ता', 'सवाब' अाैर 'तीसरा विकल्प' शीर्षक कहानियों को रख सकता हूँ। सामाजिक यथार्थ की अनेक परतें इनमें कहानी कौशल के साथ खोली गई हैं।

सतोष खन्ना की ये कहानियाँ प्रायः वर्णनात्मक शैली में लिखी गई हैं जिनमें कहानी कहने की विविध शैलियों के दर्शन नहीं होते। फिर भी इनमें कहानीपन भरपूर है जिसका कारण कथा-वस्तु और चरित्र चित्रण को समान महत्त्व देना। कथा-वस्तु को गौण कर भाषिक चमत्कार दिखा कर पाठकों को हतप्रभ करने वाली लेखिका सन्तोष खन्ना नहीं हैं।

उनकी भाषा में विविधता है। उसमें परिनिष्ठित हिंदी के साथ यथास्थान देशज, तद्‌भव, अंग्रेज़ी, उर्दू, फ़ारसी शब्दों के कुशल प्रयोग भी हैं। अतः 'आज का दुर्वासा' एक रोचक, पठनीय कहानी-संग्रह है, जिसमें अनेक सामाजिक सरोकारों की कुशल व्यंजना हुई है।

'आज का दुर्वासा' (कहानी-संग्रह), लेखिका सन्तोष खन्ना, भारत ज्योति प्रकाशन, बी-एच-48, (पूर्वी) शालीमार बाग, दिल्ली-110088, पृष्ठ 177, मूल्य 250/रुपए

❑

Ramesh Chander Sambherwal

Food Safety Laws in India

A. Background Leading to Enactment of Food Safety Laws

1. WORLD SCENARIO : Food Safety Ecosystem is a world concept of imbibing the safety of food we eat. The inception of the concept can be traced into the creation of Food and Agricultural Organization (FAO)as early as in 1945 and the World Health Organization(WHO) in 1948. The two organizations later jointly passed a resolution for the creation of Codex Alimentarius Commission in 1961. 'Codex Alimentarius' is a Latin term which means 'food code'. Codex Alimentarius codes are designed for uniform implementation in member countries. India became the member of Codex Alimentarius Commission in 1964. Presently, the Commission has 188 member countries and 1 member organization (i.e. EC). The Headquarters of the Commission is at Rome (Italy).

Codex Alimentarius Commission's food standards : International food trade has existed for thousands of years but, until not too long ago, food was mainly produced, sold and consumed locally. Over the last century, the amount of food traded internationally has grown exponentially, and a quantity and variety of food, never before possible, travels the globe today. The CODEX ALIMENTARIUS international food standards, guidelines and codes of practices contribute to the safety, quality and fairness of this international food trade. Through such trade, consumers can trust the safety and quality of the food products they buy and importers can trust that the food they ordered will be in accordance with their specifications.While being recommendations for voluntary application only by members, Codex standards serve in many cases as a basis for national legislation.The Codex Alimentarius is a collection of internationally adopted food standards and related texts presented in a uniform manner. These food standards and related texts aim at protecting consumers' health and ensuring fair practices in the food trade. The publication of the Codex Alimentarius(food codes) is intended to guide and promote the elaboration and establishment of definitions and requirements for foods to assist in their harmonization and, in doing so, to facilitate international trade.

Principles of the Codex Alimentarius – Scope of the Codex Alimentarius : The Codex Alimentarius includes standards for all the principal foods, whether processed, semi-processed or raw, for distribution to the consumer. Materials for further processing into foods should be included to the extent necessary to achieve the purposes of the Codex Alimentarius as defined. The Codex Alimentarius includes provisions in respect of food hygiene, food additives, residues of pesticides and veterinary drugs, contaminants, labelling and presentation, methods of analysis and sampling, and import and export inspection and certification.

Nature of Codex Standards : Codex standards and related texts are not a substitute for, or alternative to national legislation. Every country's laws and administrative procedures contain provisions with which it is essential to comply.

Codex standards and related texts contain requirements for food aimed at ensuring for the consumer a safe, wholesome food product free from adulteration, correctly labelled and presented. A Codex standard for any food or foods should be drawn up in accordance with the Format for Codex Commodity Standards and contain, as appropriate, the sections listed therein.

Revision of Codex Standards : The Codex Alimentarius Commission and its subsidiary bodies are committed to revision as necessary of Codex standards and related texts to ensure that they are consistent with and reflect current scientific knowledge and other relevant information.

When required, a standard or related text shall be revised or removed in accordance with the Procedures for the Elaboration of Codex Standards and Related Texts.

Protecting Consumer Health : Public concerns about food safety issues often place Codex at the centre of global debates. Veterinary drugs, pesticides, food additives and contaminants are some of the issues discussed in Codex meetings. Codex standards are based on sound science provided by independent international risk assessment bodies or ad-hoc consultations organized by FAO and WHO.

Removing Barriers to Trade : The reference made to Codex food safety standards in the World Trade Organization's Agreement on Sanitary and Phytosanitary measures (SPS Agreement) means that Codex has far reaching implications for resolving trade disputes. WTO members that wish to apply stricter food safety measures than those set by Codex may be required to justify these measures scientifically.

Since its foundation in 1963, the Codex system has evolved in an open, transparent and inclusive way to meet emerging challenges. International food trade is a 2000 billion dollar a -- year industry, with billions of tonnes of food produced, marketed and transported.

Each member of the Codex Alimentarius Commission is authorized to identify, and present to the appropriate committee, any new scientific and other

relevant information which may warrant revision of any existing Codex standards or related texts.

2. FOOD SAFETY ECOSYSTEM IN INDIA : The importance of food safety in India was well understood right from the establishment of Codex Alimentarius Commission in 1963. India became the member of the Commission the next year itself.

Food Safety Standards in India : Before the creation of FSSAI, food safety was being regulated in India under various statutes i.e. Vegetable Oil Products (Control) Order 1947, Prevention of Food Adulteration Act 1954, Fruits Product Order 1955, Solvent Extracted Oil, De-oiled Meal and Edible Flour (Control) Order 1967, Meat Food Products Order 1973, Milk and Milk Products Order 1992, Edible Oils Packaging (Regulation) Order 1998 etc. With the enactment of Food Safety &Standards Act, 2006, all these legislations have meged into one, thus moving from multi-lateral, multi-departmental control to a single body (FSSAI) control.

Purpose of creation of FSSAI : FSSAI has been created for laying down science-based standards for articles of food and to regulate their manufacture, storage, distribution, sale and import to ensure availability of safe and wholesome food for human consumption.Ministry of Health & Family Welfare, Government of India is the Administrative Ministry of FSSAI.

The FSS Act was operationalized with the notification of Food Safety and Standards Rules, 2011 and six Regulations in 2011. In line with the motto of *'Inspiring trust, assuring safe and nutritious food'*, FSSAI has worked relentlessly to fulfil its mandate through the following approaches:

i. Setting globally benchmarked regulations, standards and guidelines,
ii. Facilitating compliance through licensing, registration, inspection and improved laboratory network,
iii. Building capacity of regulatory staff as well as food business operators,
iv. Driving public health initiatives in the true spirit of convergence,
v. Leveraging IEC (Information, Education & Communication) and BCC (Behaviour change communication) techniques to build a food safety culture,
vi. Embracing technology to streamline processes,
vii. Forging strategic partnerships to generate and exchange knowledge and best practices.

The affairs of FSSAI are managed by its Governing Body "the Food Safety and Standards Authority of India" also called "Food Authority". The Food Authority functions on the advice of its Central Advisory Committee (CAC),Scientific Committee, and Scientific Panels created on various subjects relating to food.

3. FOOD SAFETY ECOSYSTEM IN STATES/UTs : FSSAI is helped in States/UTs by their Departments of Food Safety. The State Departments of

Food Safety are headed by Food Safety Commissioners, who are assisted by Jt./Dy. Food Safety Commissioners, Designated Officers, Food Safety Officers etc. These State Departments are responsible for the implementation of food related laws and FSSAI directions in their States.

Every Food Business Operator (FBO) with an annual turnver of Rs. 20 lacsp.a has to take FSSAI registration and over Rs. 20/- lacs a food licence. The FBOs are expected to abide by the FSS Act, Rules, Regulations, and orders, directions and advisories issued from time to time by FSSAI. Besides, each FBO has to appoint 1 Food Safety Supervisor (FSS) per 25 food handlers.

4. Food Safety Laws : For the creation of a proper science-based food safety ecosystem, FSSAI has enacted following Acts, Rules and Regulations:

1. Food Safety and Standards Act (34 of 2006) which became effective from 24.08.2006,
2. Food Safety and Standards Rules 2011 which became effective from 05.05.2011, and
3. Following Food Regulations:

Food Regulations and Date of Enforcement

1. Food Safety and Standards (Licensing and Registration of Food Businesses) Regulations, 01.08.2011
2. Food Safety and Standards (Prohibition and Restriction of Sales) Regulations, 01.08.2011
3. Food Safety and Standards (Laboratory and Sampling Analysis) Regulations, 01.08.2011
4. Food Safety and Standards (Packagingand Labelling) Regulations, 2018 01.08.2011
5. Food Safety and Standards (Contaminants, Toxins and Residues) Regulations, 01.08.2011
6. Food Safety and Standards (Food Products Standards and Food Additives) Regulations, 01.08.2011
7. Food Safety and Standards (Health Supplements, Nutraceuticals, Food for Special Dietary Use, Food for Special Medical Purpose, Functional Food and Novel Food) Regulations, 23.12.2016
8. Food Safety and Standards (Food Recall Procedure) Regulations, 18.01.2017
9. Food Safety and Standards (Import) Regulations, 09.03.2017
10. Food Safety and Standards (Approval for Non-specific Food and Food Ingredients) Regulations, 11.09.2017
11. Food Safety and Standards (Organic Foods) Regulations, 2017 29.12.2017
12. Food Safety and Standards (Alcoholic Beverages) Regulations, 2018 19.03.2018
13. Food Safety and Standards (Fortification of Food) Regulations, 02.08.2018

14. Food Safety and Standards (Food Safety Auditing) Regulations, 2018 28.08.2018
15. Food Safety and Standards (Recognition and Notification of Laboratories) Regulations, 08.11.2018
16. Food Safety and Standards (Advertising and Claims) Regulations, 19.11.2018
17. Food Safety and Standards (Packaging) Regulations, 24.12.2018
18. Food Safety and Standards (Recovery and Distribution of Surplus Food) Regulations, 26.07.2019
19. Food Safety and Standards (Safe Food and Balanced Diets for Children in School) Regulations, 04.09.2020
20 Food Safety and Standards (Labelling and Display) Regulations, 17.11.2020
21. Food Safety and Standards (Food for Infant Nutrition) Regulations, 04.12.2020

FSSAI Roles and Functions

Under Section 16 of FSS Act, FSSAI has been assigned the following roles and functions:

1) It shall be the duty of the Food Authority to regulate and monitor the manufacture, processing, distribution, sale and import of food so as to ensure safe and wholesome food,
2) the Food Authority may by regulations specify –
   (a) the standards and guidelines in relation to articles of food and specifying an appropriate system for enforcing various standards notified under this Act;
   (b) the limits for use of food additives, crop contaminants, pesticide residues, residues of veterinary drugs, heavy metals, processing aids, myco-toxins, antibiotics and pharmacologically active substances and irradiation of food;
   (c) the mechanisms and guidelines for accreditation of certification bodies engaged in certification of food safety management systems for food businesses;
   (d) the procedure and the enforcement of quality control in relation to any article of food imported into India;
   (e) the procedure and guidelines for accreditation of laboratories and notification of the accredited laboratories;
   (f) the method of sampling, analysis and exchange of information among enforcement authorities;
   (g) conduct survey of enforcement and administration of this Act in the country;
   (h) food labelling standards including claims on health, nutrition, special dietary uses and food category systems for foods; and

(i) the manner in which and the procedure subject to which risk analysis, risk assessment, risk communication and risk management shall be undertaken.

3) The Food Authority shall also –

(a) scientific advice and technical support to the Central Government and the State Governments in matters of framing the policy and rules in areas which have a direct or indirect bearing on food safety and nutrition;

(b) search, collect, collate, analyse and summarise relevant scientific and technical data particularly relating to –

(i) food consumption and the exposure of individuals to risks related to the consumption of food;

(ii) incidence and prevalence of biological risk;

(iii) contaminants in food;

(iv) residues of various contaminants;

(v) identification of emerging risks; and

(vi) introduction of rapid alert system;

(c) promote, co-ordinate and issue guidelines for the development of risk assessment methodologies and monitor and conduct and forward messages on the health and nutritional risks of food to the Central Government, State Governments and Commissioners of Food Safety;

(d) provide scientific and technical advice and assistance to the Central Government and the State Governments in implementation of crisis management procedures with regard to food safety and to draw up a general plan for crisis management and work in close co-operation with the crisis unit set up by the Central Government in this regard;

(e) establish a system of network of organisations with the aim to facilitate a scientific co-operation framework by the co-ordination of activities, the exchange of information, the development and implementation of joint projects, the exchange of expertise and best practices in the fields within the Food Authority's responsibility;

(f) provide scientific and technical assistance to the Central Government and the State Governments for improving co-operation with international organisations;

(g) take all such steps to ensure that the public, consumers, interested parties and all levels of panchayats receive rapid, reliable, objective and comprehensive information through appropriate methods and means;

(h) provide, whether within or outside their area, training programmes in food safety and standards for persons who are or intend to become involved in food businesses, whether as food business operators or employees or otherwise;

(i) undertake any other task assigned to it by the Central Government to carry out the objects of this Act;

(j) contribute to the development of international technical standards for food, sanitary and phyto-sanitary standards;

(k) contribute, where relevant and appropriate to the development of agreement on recognition of the equivalence of specific food related measures;

(l) promote co-ordination of work on food standards undertaken by international governmental and non-governmental organisations;

(m) promote consistency between international technical standards and domestic food standards while ensuring that the level of protection adopted in the country is not reduced; and

(n) promote general awareness as to food safety and food standards.

4) The Food Authority shall make it public without undue delay –

(a) the opinions of the Scientific Committee and the Scientific Panel immediately after adoption;

(b) the annual declarations of interest made by members of the Food Authority, the Chief Executive Officer, members of the Advisory Committee and members of the Scientific Committee and Scientific Panel, as well as the declarations of interest if any, made in relation to items on the agendas of meetings;

(c) the results of its scientific studies; and

(d) the annual report of its activities;

(5) The Food Authority may from time to time give such directions, on matters relating to food safety and standards, to the Commissioner of Food Safety, who shall be bound by such directions while exercising his powers under this Act;

(6) The Food Authority shall not disclose or cause to be disclosed to third parties confidential information that it receives for which confidential treatment has been requested and has been acceded, except for information which must be made public if circumstances so require, in order to protect public health.

For improving the hygiene and nutrition level and awareness towards balanced diet, FSSAI has launched several initiatives like Eat Right India, Swasth Bharat Yatra, Eat Right Creativity Challenge, Eat Right Awards, Eat Right Melas, Clean Street Food Hubs, Clean and Fresh Fruit and Vegetable Markets, Eat Right Station, BHOG (Blissful Hygienic Offering to Good),Hygiene Rating scheme for Restaurants and Catering Establishments, Sweets and Meat Shops etc. FSSAI also organizes training, capacity building programmes for food business operators,Eat Right Campus, Eat Right Shool programmes,which are are aimed at promoting environment-friendly food practices and habits.

FSSAI has brought out several Manuals, Handbooks and Flyers towards food safety. Some of these are "Detect Adulteration through Rapid Test (DART) Book" to test food adulterants at home with simple tests, "Food Safety Magic

Box" to test adulterants in a school laboratory setting, "Mobile food testing vans called Food Safety on Wheels" to reach remote areas and conduct training and awareness activities as well, "Yellow Book" for school students, Orange Book etc.

To enable healthy choices, FSSAI has launched initiatives like awareness campaigns to reduce salt, fat and sugar in the diet ("Aaj Se Thoda Kam"), Trans-Fat Free India@75 to eliminate trans fats by 2022, Food fortification to address micronutrient deficiencies across the country.

To encourage and support responsible production and consumption of food to protect the environment,FSSAI is spearheading initiatives such asJaivik Bharat, to promote authentic organic food; Save Food, Share Food, to reduce food waste and promote food donation; Safe and Sustainable Packaging in Food and Beverage Sector, to reduce the use of plastics; and Repurpose Used Cooking Oil (RUCO), for safe and healthy use of cooking oil and repurposing used cooking oil to make biodiesel, soap or other useful products.

Eat Right India (ERI) aims to scale up all these initiatives at the national level in order to ensure that each citizens eats safe and healthy food in a sustainable way. Through its Food Fortifiation initiative, FSSAI is vigorously pursuing the fortification of rice and wheat with iron, Vitamin B_{12} and Folic Acid; edible oil and milk with Vitamins A and D; and double fortification of salt with iodine and iron.

FSSAI is also working towards safe food practices, checking spoilage and adulteration, balanced diet, reduction of fat, sugar & salt, safe & healthy cooking oil, no plastic wastes, how to read labels etc.

FSSAI has also launched the following initiatives for the enforcement of food safety laws - FOOD SAFETY MITRAS, FOOD SAFETY COMPLIANCE SYSTEM, International Training Centre for Food Safety and Nutrition in parternership with EIC and Global Food Safety Partenership of World Bank, FOOD IMPORT CLEARANCE SYSTEM, Indian Food Laboratories Network, Partenership with ASCI (Advertising Standards Council of India), CHIFSS (CII-HUL Initiative on Food Safety Sciences), FOOD SAFETY RATING, SAFE AND NUTRITIOUS FOOD, Diet4Life, FOOD SAFETY DISPLAY BOARS etc.

For achieving its objectives, FSSAI is seeking association with food business operators, States/Uts, several networks, MyGov, Poshan Abhiyan, Anaemia Mukt Bharat, Ayushman Bharat, Swachch Bharat Abhiyan, Jal Shakti, Fit India, Dept. of Consumer Affairs, MHRD, M/o Food Processing Industries (MoFPI).

❑

Mitesh Tiwari and Jyoti Panchal Mistri

Child Rights in India :
A Systematic Literature Review

Abstract

This research paper highlights the situation with children rights in India with extraordinary thoughtfulness regarding customary convictions that have formed and support gender separation. The paper analyzes the prospects and limits of the recently executed Right of Children to Free and Compulsory Education Act, 2009 (RTE) to work as an adjusting specialist. It further looks at the need to go past enactment of rights to testing destructive conventional convictions that propagate discriminatory practices against children. The paper finishes up with the suggestion that raising public mindfulness and support alongside significant and moral kid interest are fundamental before children in India can appreciate the rights previously managed.

Key Words : Children Rights, Right to Education (RTE), Discriminatory Practices, etc.

Intriduction

India is home to a fifth of the world's children. The existence of very nearly 36 million of India's children are capable inside profoundly variation settings of gender, rank, class, and area, making tricky any efforts to sum up the build of 'Indian adolescence.' Hopeful children conveniently wearing school regalia advancing toward school - by walking, on bikes, confined in auto carts, happily swarmed on cycle carts, riding in smaller than expected or cooled school transports, or extravagance autos fill the morning scene in India.

This research paper covers multiple aspects giving a broad understanding of the area of research, provides a brief understanding of the various law and right provided to children by Indian constitution, and also helps in examining the implementation and execution aspect of these rights by looking at the same from different perspectives. The critical interest in writing this research paper is to identify the current *status quo* for children rights that will provide the scope for understanding the long-term sustainable viewpoints of such child rights. This research paper has been written based on review exercise conducted for number of research papers of the relevant field from previous years.

Literature Review

Children's Rights in India

The Ramayana, the Mahabharata, and the Laws of Manu are India's generally mainstream and old writings referring to the situation with children inside Indian culture (Kakar, 1981). Every one of the three writings reference distinctive treatment towards children dependent on their age, sexual orientation, and rank while driving home the point that 'steadfastness and compliance to one's elderly folks, was good as well as socially endorsed and esteemed conduct' expected, all things considered (Bhakry, 2006). Children's lives were viewed as an inescapable articulation of their karma (deeds) from the past life and the result of their dad's rank (Kakar, 1981).

The certainty of fate dictated by birth, the low legitimate status managed the cost of children, alongside the man centric conviction that children are claimed by their dads proceeded with unchallenged until pioneers like Raja Ram Mohan Roy, Mahatma Gandhi, and Pundit Jawaharlal Nehru offered voice to the enduring of children during the hour of India's freedom development. Because of their endeavors, the Constitution of free India included arrangements for the endurance, improvement, and assurance of children under Part III 'Crucial Rights' (legitimate rights) and Part IV 'Order Principles of State Policy' (non-enforceable rules to States for outlining strategy). These strategies mirrored every one of the ten standards embraced by the Universal Declaration of the Rights of the Child nine years after the fact in 1959 (Bhakry, 2006). Essential Rights under Article 14 of the Indian constitution bear the cost of the privilege to equity, particularly for ladies and children; Article 15 bears the cost of the privilege against segregation dependent on religion, race, standing, or sex; while Article 17 nullifies the act of "unapproachability' (Constitution of India, 1950). The Directive Principles under Article 39 made express the rule that '…the young period of children not be mishandled… adolescence be secured against misuse and against good and material surrender' and that 'children are given freedoms and offices to create in a sound way and in states of opportunity and nobility.' Furthermore, Article 51 guides the State to 'encourage regard for global law and deal commitments' (Constitution of India, 1950).

Brief Understanding about Convention on Rights of the Child (CRC)

India has been a functioning member in a large part of the worldwide talk on child rights and was a functioning member in the eleven-year consideration measure that molded the CRC. India approved the CRC in 1992, reaffirming its prior acknowledgment of the Universal Declaration of the Rights of the Child.

With regard to the prerequisites of CRC, India presented its underlying report to the council in 1997. The Committee, in checking on the 500-page report voiced its endorsement of the 'presence of a wide scope of established and authoritative arrangements, and foundations for the security of common liberties

and children's privileges' and invited 'the incessant references to arrangements of worldwide basic freedoms instruments by the court, specifically, the Supreme Court' (CRC, 2000). The Committee likewise perceived the broad commitment of non-administrative associations (NGOs) in supporting basic freedoms in India and complimented India for her inclusion and collaboration in numerous global instruments. It further recognized the obstacle to endeavors at actualizing youngster rights coming from India's high populace development rate, enormous kid populace, and incessant cataclysmic events. The Committee scrutinized India's endeavors to actualize its current lawful system, defeat coordination and correspondence issues coming about because of the administrative construction of government; make responsibility, and record for its inability to gather, dissect, and disperse dependable disaggregated information that would all the more successfully mirror the mind boggling uniqueness in children's lived encounters (CRC, 2000). These worries recognized by the Committee are like those voiced by neighborhood non-government people and offices working with and for children in India and are the focal reactions of the Right to Free and Compulsory Education Act, 2009.

Gender and Child Rights

Man centric and patrilineal customs are profoundly established in Indian history and culture. These customs have made and keep on propagating differential qualities set on young ladies and young men across station, class, and locale. Patrilineal practices direct that family ancestry, the most important belonging in most Indian families, must be helped forward through the child. Until as of late land legacy laws just permitted young men to acquire *pushteni jaidat* (familial property). Man centric practices shape the dichotomous socialization of young men and young ladies. Young men are raised as attractive increases to the family and are urged to be solid, autonomous monetary suppliers. Young ladies, whose birth may frequently be seen as a hardship, are raised to become alluring ladies and accordingly, are associated to be acceptable, faithful, obedient, accommodating, and productive inside the homegrown area. Young men are esteemed for their capacity to give a definitive salvation to their folks' spirit by lighting their memorial service fire, while guardians improve their punya (generosity) by performing kanya daan (kanya = little girl, daan = blessing to the husband to be's family) at the hour of their little girl's marriage. Progressing hypergamous customs direct that a young lady just can wed into a group of equivalent or higher status inside her position. Lately, this has prompted expansion of the share custom with the end goal that guardians of little girls feel the weight of social event her endowment from the snapshot of her introduction to the world, and numerous guardians assume gigantic obligation to pay for this settlement. Also uniquely designs it a regularizing practice for ladies to live with and serve their significant other's family after marriage. This causes a perspective on young ladies as being *paraya dhan* (acquired fortune), while young men wed and get back a lady of the hour to serve their folks. Inside these

profound male centric practices, once in a while the lone way a lady can transcend her subordinate status is by bearing children (Manhoff, 2006). It is normal practice to favor new ladies with the gift, 'may you be the mother of numerous children."

Female Literacy Rates

The difference in education rates is one more sign of a proceeding with predisposition against young ladies. While proficiency rates have shown amazing improvement in the time since Independence hopping from 18.35% in 1951 to 65.38% in 2001 for everybody, improvement in female education has been considerably more noteworthy ascending from 8.9% in 1951 to 54.21% in 2001. Despite this sensational ascent, the general female proficiency rates are inauspiciously low. Despite the fact that female proficiency is rising, guardians in quite a bit of India don't urge their little girls to go to in excess of a couple of long stretches of school, since advanced education is viewed as an unbeneficial interest in young ladies who will wed and move to their spouses' families (Sudha and Irudaya Rajan, 1999). This is one of numerous reasons why even in instructively progressed states, a large portion of the unskilled people are females (Govinda, 2007).

Plainly, despite public endeavors to give lawful assurance against segregation, young ladies in India keep on enduring genuine types of separation dependent on unchallenged and unaltered unsafe convictions and customs. The Committee (CRC, 2000 & CRC, 2004) recorded the 'diligence of biased social perspectives and hurtful conventional practices towards young ladies, including female child murder, particular early terminations, low school enlistment and high drop-out rates, and early and constrained relationships' as infringement of privileges of young ladies in India. Talk that challenges the conventional perspective on young ladies as a "trouble' and 'not exactly' is fundamental for improving their status. As its would see it Report the Committee (CRC, 2000) energizes the utilization of 'state funded training efforts to forestall and battle sexual orientation separation, especially inside the family.' It further suggests that 'political, strict and local area pioneers be prepared to help endeavors to kill conventional practices and perspectives which victimize young ladies."

Education and Child Rights

The divergence in proficiency rates is one more sign of a proceeding with a predisposition against young ladies. While proficiency rates have shown amazing improvement in the time since Independence bouncing from 18.35% in 1951 to 65.38% in 2001 for everyone, improvement in female education has been much more noteworthy ascending from 8.9% in 1951 to 54.21% in 2001. Despite this sensational ascent, the general female education rates are bleakly low. In spite of the fact that female proficiency is rising, guardians in a lot of India don't urge their little girls to go to in excess of a couple of long stretches of school,

since advanced education is viewed as an unbeneficial interest in young ladies who will wed and move to their spouses' family units (Sudha and Irudaya Rajan, 1999). This is one of the numerous reasons why even in instructively progressed states, a large portion of the uneducated people are females (Govinda, 2007).

Education in India : Past and Present

Gender, position, and class have characterized availability to instruction from the most punctual beginning of formal tutoring in India when just young men of the upper rank were viewed as deserving of being taught. Over the long haul the design of formal tutoring in India has been molded by the different practices and societies that either have advanced inside India or were purchased by outside trespassers. Of these, the Mughal (1526-1858) and British (1858-1947) Empires have been the most persuasive. While the Mughals, presented madrassas in India (Sultanat, 2003), the British presented the pilgrim model of training which proceeds, unchallenged and unaltered, as the current structure for formal tutoring in India.

Through every one of these changes one reality has remained generally predictable : admittance to quality instruction is restricted to youngsters dependent on their gender, standing, and class (Bhan, 2001); a reality repeated by Weiner's (1991) perception that India's situation on schooling lays on 'profoundly held convictions that there is a division between individuals who work with their psyches and rule and individuals who work with their hands and are decided and that training ought to build up instead of separate this division".

Role of NGOs

India works at improving issues identified with both access and nature of schooling, training alone can't dispose of sexual orientation, standing, or class disparities. Nor are endeavors restricted to the legitimization of kid rights adequate to kill Gender, station, or class disparities. Amartya Sen (2006) states that while enactment of rights is a fundamental advance towards guaranteeing the enforceability of explicit least qualifications, it makes the way for the prohibitive or restricted translation of the unpredictable connection among rights and obligations. Does restricting RTE to the 6-14 age range mean the State has no instructive commitment to kids outside these cutoff points? Will the impression of no-commitment bring about non-activity? Shantha Sinha (individual correspondence, September 30, 2010) accepts along these lines, and states, 'laws are vital as they show the objectives and course set by the State. Simultaneously, good natured laws will get results just when kids become the focal point of consideration in each standard issue and catch the interest of the lion's share."

Sen (2006) likewise alerts against review rights as having a place exclusively inside the limited domain of enactment. Rights, he states, are a 'verbalization of social morals' and for rights to be definitively executed, public

talk must be changed and locked in. Training, authorization, and public convictions can't be treated as divided frameworks that work freely of one another. Or maybe they should be seen comprehensively as requiring a typical reaction. Public talk in India, as in different nations, is showed into public activity through the creation and functions of Non-Governmental Organizations (NGOs). The assessed 1.2 million NGOs in India (PRIA, 2002) alongside grassroots associations and other urban organizations have assumed a basic part in improving access and value in instruction, drawing openly talk on youngsters' privileges while publicizing infringement of kids' privileges alongside giving designs to shield them.

Current law just recognizes work of children younger than fourteen (under The Child Labor [Prohibition and Regulation] Act, 1986) as 'unsafe' and in this manner unlawful. It neglects to address any remaining types of noticeable and imperceptible youngster work, including homegrown and ranch work that cost children the chance to join in and stay in school. The MV Foundation's 'non-debatable' position on kid work enveloping any kid, not in school has had a critical effect in molding the RTE.

Children's Participation

A similarly significant methodology taken by NGOs and other urban and organization offices is that of expanding important and moral youngster investment past symbolic appearances at public festivals or gatherings. Article 12 of the CRC traces the privilege of a kid to frame and communicate conclusions, be heard and take an interest in exercises including legal and regulatory procedures including the youngster in agreement 'with the age and development of the kid' (CRC, 2000). Article 12 alongside Article 2, are the most broadly utilized standards in checking and usage of the CRC (Doek, 2007).

Not with standing, the legitimate and complete usage of Article 12 requires numerous

States to rethink their perspectives on youth. This is valid for India where the Laws of Manu, which set children close to the lower part of the social progressive system deciding the negligible degree of insurance and assets managed the cost of them, proceeds to a great extent direct the situation with children in present day India (Bhakry, 2006).The low economic wellbeing of children alongside the conviction that children are future residents with restricted organization and dynamic capacities has brought about kid investment identical to what Hart (1992) alludes to as posturing or 'enhancement.' Hart's (1992) perception that children are 'the most shot and least tuned in to' citizenry remains constant for India. There is no shortage of terrible pictures of helpless Indian children utilized by nearby, public, and worldwide organizations to earn uphold and additionally compassion. Such types of manipulative kid interest are in direct infringement of Article 12 as they commodify children while at the same time affronting and limiting their office and voice.

Research Methodology

Fink (1998), has comprehensively defined the literature review as 'A clear-cut and organized methodological plan for analyzing, recognizing, and deducing the knowledge available in existing literature.' The literature reviews can also be well understood as a process of content analysis available in the literature. The qualitative and quantitative measures are combined to examine the descriptive features of the concept under review (Brewerton P, Millward L., 2001). The review papers are valuable for researchers, academicians, and practitioners as well, since they get a comprehensive and updated view of the field of knowledge. The primary and most significant aspect for these review papers is that it should contribute some worth to a specific knowledge area (Wee, B. V., & Banster, D., 2016). In this research paper, Systematic Literature Review (SLR) method is used for this paper as a review method. SLR method has been used and verified by many of the researchers. This method provides an ease in identifying and understanding the core theoretical aspect of the relevant research field (Meredith, J., 1993). This research paper is based on reviewing numerous research papers using the SLR method. The reason for considering this method is that this method is more specific concerning to the selection of research papers (Torchia, Calabro & Morner, 2015).

Duscussion & Conclusion

It was in the battle for their opportunity that Indians joined in a typical reason and found the force of peaceful public dissent as satyagraha (truth or soul power). Today the Indian economy is flourishing and India is battling to discover its place of noticeable quality in the worldwide economy. Most of Indian children anyway are attempting to endure. Laws ensuring and empowering their endurance and advancement do exist, as do programs proposed to accommodate children's privileges. What is missing is a successful system for executing and observing the current laws. Until the unsafe convictions that see children as less important than grown-ups, young ladies as less significant than young men, and a few group more 'unadulterated' than others are tested and changed, little advancement can be made in lessening the huge disparities experienced by most of Indian children. There is no uncertainty that enormous advancement has been made over the most recent couple of years in improving the situation with kid rights in India yet the proceeded with prohibition of gatherings of children restricts their admittance to rights. As Nutbrown and Clough (2009) noticed 'boosting' cooperation requires 'limiting' rejection. The advancement can be ascribed part of the way to an expanded public and global spotlight on youngster rights, and incompletely to the strain to meet the Millennium Development Goals. In any case, alert should be taken in assessing the drawn out adequacy of these progressions as they are happening inside a system of unchallenged and unaltered unsafe customary convictions and practices.

India is probably the biggest majority rule government on the planet and

keeping in mind that she frequently feels the weight of its billion residents, a similar weight can turn into her most noteworthy strength if the majority could be urged to assume the double duties of supporting children's privileges and publicizing and condemning infringement. At the point when we can see a little youngster wearing clothes weaving her way among the thick and tumultuous traffic of India's city roads to sell strands of fragrant jasmine blossoms for a couple of rupees and perceive some unacceptable when we can see a youthful worker kid being slapped in light of the fact that he is late with a client's chai request and we perceive some unacceptable; when we can see the appearances and lives behind every measurement and remember them to address the children around us, the workers in our home, the creators of soccer balls we recklessly kick and are moved to pause and go about as satyagrahis, by far most of India's children will be without trust.

❑

References

1. Asian Center for Human Rights (2003). The status of children in India : An alternate report to the United Nations Committee on the Rights of the Child on India's first periodic report. (CRC/C/93/Add.5). New Delhi, India.
2. Bahuguna, N.J (2007). Child reporters take up social issues in Rajasthan villages. UNICEF India. Retrieved from: http://www.unicef.org/india/children_3811.htm.
3. Bhakry, S. (2006). Children in India and their rights. National Human Rights Commission, New Delhi, India.
4. Bhan, G. (2001). India Gender Profile. Report No. 62. Brighton, UK: Institute of Development Studies, University of Sussex.
5. Cantwell, N. (2007). Words that speak volumes: A short history of the drafting of the CRC. In 18 Candles: The Convention on the Rights of the Child Reaches Majority (21-30). Switzerland: Institut international des droits de l?enfant.
6. Child Line India Foundation (2010). Child Line 1098 Service. Delhi, India. Retrieved from: http://www.childlineindia.org.in/
7. Child Rights Information Network (2010). London, United Kingdom. Retrieved on April 1, 2010 from: http://www.crin.org
8. Child survival: India and China's challenges. The Lancet (2008), 372 (9638), 508. Retrieved on September 1, 2010 from: http://www.thelancet.com/journals/lancet/article/PIIS0140-6736(08)61209-X/fulltext#
9. Constitution of India (1950). Retrieved on August 29, 2010 from:http://india.gov.in/govt/constitutions_india.php
10. Convention on the Rights of the Child (2000). Concluding observations of the Committee on the rights of the child: India. United Nations. Retrieved on August 28, 2010 from:http://www.unhcrc.org/refworld/country, CRC, IND, 3ae6afc44,0.html

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत द्वारा प्रकाशित

लोकप्रिय प्रकाशन

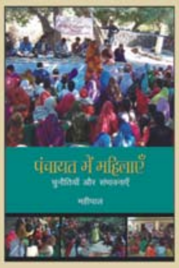

पंचायत में महिलाएँ चुनौतियाँ और संभावनाएँ
महीपाल
₹ 210 पृ. 204
ISBN 978-81-237-7968-3

राजभाषा के रूप में हिंदी
निशान्त जैन
₹ 130 पृ. 98
ISBN 978-81-237-8147-1

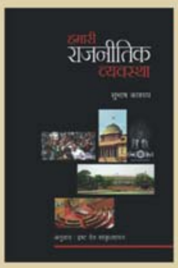

हमारी राजनीतिक व्यवस्था
सुभाष काश्यप
अनु : इष्टदेव सांकृत्यायन
₹ 410 पृ. 428
ISBN 978-81-237-9277-4

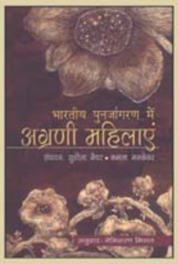

भारतीय पुनर्जागरण में अग्रणी महिलाएँ
सुशीला नैयर,
कमला मनकेकर (संपा.)
अनु. : नेमिशरण मित्तल
₹ 160 पृ. 438
ISBN 978-81-237-4420-9

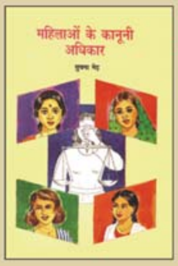

महिलाओं के कानूनी अधिकार
सुषमा मेढ़
₹ 50 पृ. 72
ISBN 978-81-237-3915-X

हमारा संविधान भाव एवं रेखांकन
लक्ष्मीनारायण भाला
'लक्खी दा'
₹ 385 पृ. 110
ISBN 978-81-237-8946-0

nbt.india
एकः सूते सकलम्

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें :
राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत
शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज़ II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070

राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत की पुस्तकें ऑनलाइन खरीदें :
www.nbtidia.gov.in/amazon.in

दूरभाष :
91-11-26707700
वेबसाइट :
www.nbtindia.gov.in

नई दिल्ली ◆ मुंबई ◆ बेंगलुरु ◆ कोलकाता ◆ चेन्नै ◆ हैदराबाद ◆ गुवाहाटी ◆ अगरतला ◆ पटना ◆ कटक ◆ एर्णाकुलम

R.N.I. 61909/95 ISSN : 0976-0024

विधि भारती परिषद् के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

1. अनुवाद के नये परिप्रेक्ष्य, लेखक : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए
2. हिंदी और भारतीय साहित्य में महिला सरोकार, सं. : सन्तोष खन्ना, 2016, मूल्य : 450/- रुपए
3. सामाजिक-विधिक सरोकारों की संस्कृति, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 77/- रुपए
4. इतिहास बनता समय, लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
5. 'क्या पाया?क्या खोया?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
6. रोशनी, (उपन्यास), लेखिका : सन्तोष खन्ना, 2013, मूल्य : 410/- रुपए
7. 'संग्राम शेष है' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
8. 21वीं शती में नारी : क़ानून और सरोकार, मूल्य : 350/- रुपए
9. 'क्या मैं ग़लत थी?' (कहानी-संग्रह), डॉ. उषा देव, मूल्य : 200/- रुपए
10. 21वीं शती में मानव अधिकार : दशा और दिशा, मूल्य : 250/- रुपए
11. भारत का संविधान : अनुचिंतन के नये क्षितिज, मूल्य : 250/- रुपए (उपलब्ध नहीं है)
12. भारतीय क़ानूनों का समाजशास्त्र, सन्तोष खन्ना, मूल्य : 500/- रुपए (विधि, न्याय मंत्रालय द्वारा पुरस्कृत)
13. Dimensions of Environmental Law, Ed. Santosh Khanna, Price : 400/–Rs.
14. Reappraisal of the Constitution, Ed. Santosh Khanna, Price : 350/-Rs.
15. Human Rights Today, Ed. Santosh Khanna, Price : 500/–Rs.
16. The Consumer Protection Law and the Rights of Consumers Ed. Santosh Khanna, Price : 400/–Rs.
17. स्मृतियाँ (कहानी-संग्रह) लेखक : अख़्तरुल हनीफ, विधि भारती परिषद्, मूल्य : 100/-रुपए
18. उपभोक्ता संरक्षण क़ानून और न्याय, मूल्य : 250/- रुपए
19. 'साक्षी' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 60/- रुपए
20. 'भावी कविता' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 120/- रुपए
21. 'संत जोन', (नाट्यानुवाद), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 245/- रुपए
22. पर्यावरण एवं पर्यावरण संरक्षण क़ानून, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 200/- रुपए
23. 'तुम कहो तो!' (मौलिक नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 125/- रुपए
24. 'कजरी' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 175/- रुपए
25. 'द्रौपदी ज़िंदा है' (कथा-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 150/- रुपए
26. 'खुशी के पल' (कथा-संग्रह) डॉ. सरस्वती बाली, मूल्य : 150/- रुपए (हिंदी अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
27. सूचना का अधिकार अधिनियम : कार्यान्वयन और चुनौतियाँ, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
28. 'अब की लड़का नहीं' (कहानी-संग्रह) लेखिका : डॉ. उषा देव, मूल्य : 250/- रुपए
29. 'आज का दुर्वासा!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
30. 'सन्धि-पत्र' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2011, मूल्य : 300/- रुपए
31. 'भारत की संसद और सामाजिक सरोकार', सं. सन्तोष खन्ना, 2011, मूल्य : 350/- रुपए
32. 'सब सुंदर है!' (कहानी-संग्रह), लेखिका : डॉ. उषा देव, 2012, मूल्य : 300/- रुपए
33. Birbhadra Karkidholi : The Flight of a Skylark, Ed. Prof. Om Raz, 2017, 300/-
34. 'समय का सच' (कविता-संग्रह), सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
35. भारत में चुनाव, हिंदी की भूमिका और चुनाव सुधार, सं. सन्तोष खन्ना, मूल्य : 250/- रुपए
36. सेतु के आर-पार, (नाटक) नाटककार : सन्तोष खन्ना, मूल्य : 300/- रुपए
37. भारत का संविधान : नए परिप्रेक्ष्य, 2020, मूल्य : 500/- रुपए।
38. भारत का संविधान, संस्कृति और क़ानून, 2021, मूल्य : 100/- रुपए

पुस्तकें मिलने का पता : विधि भारती परिषद

बी.एच/48 (पूर्वी), शालीमार बाग, दिल्ली-110088

टेलीफोन : 011-45579335, **मोबाइल :** 9899651872, 9899651272

Published & Printed by Santosh Khanna On Behalf of Vidhi Bharati Parishad, BH/48, (Poorvi) Shalimar Bagh, Delhi-88, Mobile : 09899651872, 09899651272 & Printed at Archana Printers, 1/1955, Street No. 22-A, East Ram Nagar, Shahadra, Delhi-32, Mobile : 9811357243